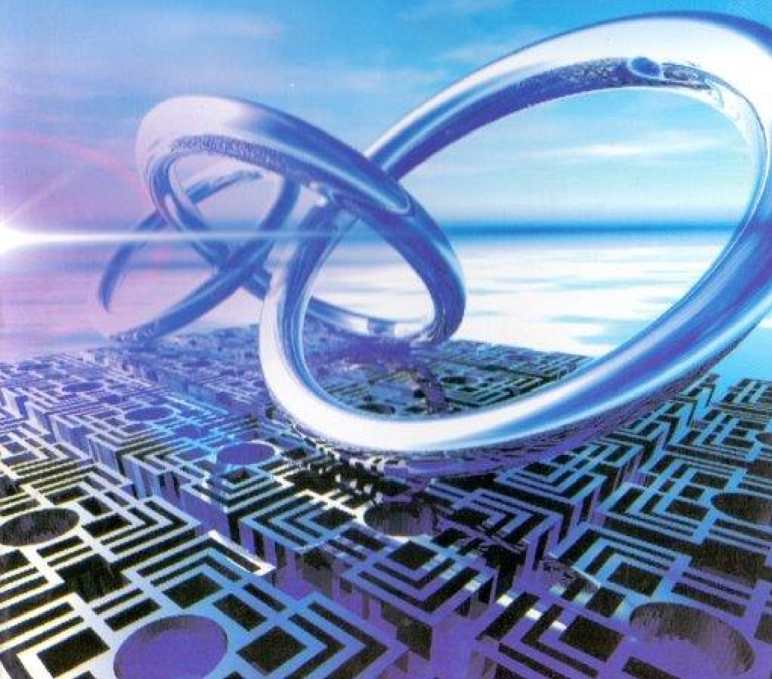
असीम पर निर्भर ससीम जीवन



असीम पर निर्भर-ससीम जीवन



लेखक :

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९

फैक्स नं०- २५३०२००



२००९ मूल्य : २१.०० रुपये

विषय-सूची

लहरों का पृथक् अस्तित्व दीखने पर भी वे वस्तुतः समुद्र की विशाल जलराशि की ही छोटी-छोटी इकाइयाँ होती हैं। किरणों का समन्वय ही 'सूर्य' है। व्यक्तियों के समूह को 'समाज' कहते हैं। सृष्टि के सबसे छोटे घटक अंड या अणु कहलाते हैं, इन्हीं का विशाल समुदाय ब्रह्मांड है। आत्माओं की सामूहिक चेतना 'परमात्मा' है। हम हवा के विशाल समुद्र में उसी प्रकार साँस लेते और जीते हैं, जिस प्रकार मछलियाँ किसी जलाशय में अपना निर्वाह करती हैं। प्राणियों की समग्र सत्ता 'ब्रह्म' है। अणुओं का समुदाय 'ब्रह्मांड'। प्राणी और पदार्थों की सत्ता दीखती तो स्वतंत्र है; पर वस्तुतः वह एक ही विशाल महाप्राण के अनंत संसार से अपना पोषण प्राप्त करते हैं, उसी में उगते, बढ़ते और बदलते रहते हैं।

सृष्टि—संसार की नियामक सत्ता

यों प्रत्येक व्यक्ति अपने सुख-दुःख, आनंद-क्षोभ, शांति-उद्वेग के लिए स्वयं जिम्मेदार है। स्वयं वह अपने लिए काँटे बोता है और फूल उगाता है। फिर भी उसे अपने किये का परिणाम चुनने की स्वतंत्रता नहीं है। यदि यह स्वतंत्रता मिली होती, तो कोई भी व्यक्ति बुरे काम करने के बाद भी अच्छे परिणाम चुन लेता और बुरे कार्यों के परिणाम दूसरे व्यक्तियों के लिए छोड़ देता।

इसी कारण कहा जा सकता है कि मनुष्य कर्म करने में तो स्वतंत्र है; पर परिणाम ईश्वर के अधीन है, ईश्वर—एक ऐसी व्यवस्था, नियामक सत्ता है, जो कर्मों के परिणाम और उस आधार पर जातिगत विधियों का नियमन करती है। उस सत्ता को असीम कहा जाता है, इसलिए यह मानने में कोई संकोच नहीं करना चाहिए कि मनुष्य का जीवन असीम पर निर्भर है।

वैसे भी प्रत्येक कर्म का कोई अधिष्ठाता, प्रत्येक रचना का कोई रचयिता और प्रत्येक व्यवस्था का कोई-न-कोई नियामक अवश्य होता है। आस्तिकवाद के समर्थन में भी यही तर्क दिया जाता है और इसी आधार पर ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध किया जाता है। प्रश्न यह भी किया जा सकता है कि जब प्रत्येक रचना का कोई न कोई अधिष्ठाता है, तो इसी के अनुसार ईश्वर की सृजेता सत्ता भी कोई न कोई होनी चाहिए। ईश्वर यदि अपना कारण स्वयं है, तो फिर प्रकृति अपना कारण स्वयं क्यों नहीं हो सकती ?

इस तरह के प्रश्न, उत्तर और प्रतिप्रश्नों की श्रृंखला का कहीं भी अंत नहीं है। पांडित्य-प्रदर्शन के लिए, अपनी विद्वत्ता सिद्ध करने के लिए कितने ही तर्क दिये जा सकते हैं और प्रतिपक्षी को हतप्रभ किया जा सकता है; परंतु सत्य की शोध के लिए पूर्वाग्रह से मुक्त

दृष्टिकोण चाहिए और चाहिए निर्मल दृष्टिकोण, ताकि वस्तुस्थिति को उसके सही परिप्रेक्ष्य में देखा समझा जा सके।

ईश्वर है या नहीं है उससे भी ज्यादा विचारणीय प्रश्न यह रहा है कि इस विश्व की रचना कैसे हुई ? किसने की ? इस प्रश्न पर जो मतभेद चिरकाल से चला आ रहा है, वह अभी भी विद्यमान है। विज्ञानी कहता है कि जड़ तत्त्वों का अनायास सम्मिलन ही सृष्टि का निमित्त है। इसी से छोटे-बड़े पदार्थ मिले, जिनमें चेतना भी एक इकाई है। आस्तिक मान्यताओं के अनुसार हर वस्तु का कोई कर्त्ता होता है, तो सृष्टि का भी कोई चेतन-कर्त्ता होना चाहिए वह ईश्वर है। ईश्वरवादियों की दो मान्यताएँ हैं—एक यह कि वह अपनी सूक्ष्म स्थिति से 'दृष्टा', 'साक्षी' है और सृष्टि का सूत्र संचालन बाजीगर द्वारा कठपुतली नचाने की तरह करता है। दूसरा पक्ष है कि यह सृष्टि ही ईश्वर है। हर पदार्थ के मूल में काम करती हलचल और हर प्राणी में निवास करने वाली बुद्धि के रूप में उसकी सत्ता प्रत्यक्ष है। व्यष्टि को उसका अंश माना जाए और समष्टि को उसका संयुक्त-समग्र रूप।

इन मान्यताओं पर दार्शनिक दृष्टि से विचार करने की आवश्यकता है। विज्ञान पक्ष की यह मान्यता यदि स्वीकार कर ली जाए कि परमाणुओं के मिलन से सृष्टि बनी, तो एक नया प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि प्राणियों में जो 'अहम्' बोध पाया जाता है, क्या वह भी उसी अणु सम्मिलन का परिणाम है ? क्या विज्ञानियों द्वारा आविष्कृत यंत्रों में वह 'अहम्' है। नदी, पर्वत, अन्न, धातु आदि पदार्थों में वह आत्म-बोध है ? क्या वे विचारपूर्वक कुछ करने और बनने का उपक्रम करने की स्थिति में हैं ? क्या उनमें दूसरों के प्रति सहानुभूति-संवेदना है। क्या उनमें आकांक्षा, विचारणा एवं क्रियाशीलता जैसी अंतःचेतनाएँ उठती हैं ? यदि ऐसा रहा होता, तो जड़-पदार्थ भी चेतन प्राणियों की तरह अपनी-अपनी योजनाएँ बनाते और इच्छा-पूर्ति के लिए स्वेच्छापूर्वक स्वतंत्र गतिविधियाँ अपनाते।

जड़ का आधार चेतना है या चेतना का आधार जड़ ? यह विवाद का मुख्य विषय है। पदार्थ में कुछ अपनी विशेषताएँ हैं। उनके परस्पर मिलन से नई-नई ऐसी वस्तुएँ बनती हैं, जो मिलन वाले घटकों से भिन्न प्रकार की होती हैं। रसायन-शास्त्र के अंतर्गत ऐसे प्रयोग निरंतर होते रहते हैं। इस मिलन प्रतिक्रिया की विचित्रता के कारण ही यह अनुमान होता है कि जब वस्तुओं की रगड़ से बिजली पैदा हो सकती है, तो रासायनिक पदार्थों का अमुक सम्मिश्रण चेतन को क्यों उत्पन्न नहीं कर सकता ? इस तर्क पर यह विचार करना चाहिए कि रासायनिक सम्मिश्रण से नये पदार्थ या प्रवाह तो अवश्य बनते हैं, पर वे सभी बोधरहित होते हैं। आग-पानी के सम्मिश्रण में एक तीसरी चीज भाप तो बन सकती है, पर वह रहेगा बोधरहित ही। रगड़ से बिजली तो बनती है, पर उसमें ज्ञान कहाँ होता है ? मनुष्यकृत अगणित अद्‌भुत यंत्रों का निर्माण हुआ है। कंप्यूटर कितने ही प्रसंगों में मनुष्य से अधिक बुद्धिमान और तत्पर दिखाई पड़ते हैं; फिर भी उनमें अपनी चिंतन क्षमता नहीं है, किंतु बुद्धियुक्त मनुष्य द्वारा संचालित किये बिना बहुमूल्य स्वसंचालित कहे जाने वाले यंत्र भी कहाँ काम करते हैं ? अंतरिक्ष में उड़ने वाले राकेटों का भी नियंत्रण तो मनुष्य को ही करना पड़ता है, भले ही उन यंत्रों में कितनी ही प्रचंड सामर्थ्य क्यों न भरी पड़ी हो ? फिर निर्माताओं ने उन यंत्रों में जितनी सामर्थ्य भर दी है, वे उससे रत्ती भर भी अधिक काम नहीं कर सकते। स्थिति के अनुसार परिवर्तन करने की सूझ-बूझ उनमें कहाँ होती है ? वे अपने में उत्पन्न हुई गड़बड़ियों को समझने तथा सुधारने में भी समर्थ कहाँ होते हैं ? ऐसी दशा में जड़ से चेतन की उत्पत्ति कहाँ हो सकी ? बात इतनी भर सिद्ध हुई कि पदार्थों के मिलने से नई किस्म के पदार्थ बन सकते हैं, पर वे रहेंगे अंतःबोधरहित ही। चेतना का गुण बोध है। जिसे बोध नहीं—मात्र हलचल करता है—उसे चेतन की संज्ञा नहीं दी जा सकती।

महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक उपलब्धियाँ चेतन मस्तिष्क के प्रयास का प्रतिफल हैं। यदि ऐसा न होता, तो प्रकृति की विद्युत्-शक्ति बहुत पहले ही अपने अस्तित्व का परिचय देने लगी होती और आज जो काम कर रही है, वह उससे भी पहले करने लगी होती। पदार्थ में पाई जाने वाली 'एनर्जी' हलचल भर कर सकती है। चेतना का मौलिक गुण है—आत्म बोध। रेडियम आदि में शक्तिशाली 'एनर्जी' पाई जाती है, पर वह आत्म-बोध के आधार पर संभव हो सकने वाली विचारणा और आकांक्षा से सर्वथा रहित है। किसी विचारशील के इशारे पर अपनी क्रियाशक्ति का प्रभाव भर दिखा सकती है। एनर्जी और चेतना दोनों एक वस्तु नहीं हैं, जैसा कि विज्ञान पक्ष द्वारा प्रतिपादन किया गया है।

न तो चेतन जड़ है और न जड़ में चेतना का अस्तित्व है। दोनों की अपनी-अपनी सत्ता और महत्ता है। हाँ, दोनों के बीच ताल-मेल बहुत अधिक है। जड़ से चेतन की अपनी आकांक्षाएँ एवं आवश्यकताएँ पूरी करने का अवसर बनता है। चेतना से जड़ की उपयोगिता को उभारने और सुव्यवस्थित रूप से प्रयुक्त करके उसकी सार्थकता सिद्ध की जाती है। लोक व्यवहार में यही क्रम चलता है। सृष्टि निर्माण का आधार भी यही समझा जाना चाहिए।

विज्ञान की मान्यता यह है कि जो जाना गया वह यह है। उसका यह आग्रह नहीं है कि जो जान लिया गया, उससे आगे और कुछ जानने के लिए नहीं है। जिज्ञासा का द्वार खुला रहने और भावी शोध से नये निष्कर्ष निकालने की आशा बनाये रहने के कारण विज्ञान को नास्तिक नहीं कहा जा सकता। वह आज ईश्वर को उस रूप में नहीं मानता, जिसमें कि आस्तिक मानते हैं, तो भी ऐसी संभावनाएँ विद्यमान हैं, जो चेतना का स्वतंत्र अस्तित्व सिद्ध करने के लिए आगे बढ़ती चली आ रही हैं और विज्ञान को उन संभावनाओं को स्वीकार करने के लिए मस्तिष्क खुला रखना होगा।

नियंत्रित और नियामक व्यवस्था और व्यवस्थापक के न्याय से भी ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध होता है। यह तो सर्वमान्य है कि

कार्य का कोई अधिष्ठाता, प्रत्येक रचना का कोई कलाकार अनिवार्य रूप से होता है। आगरे का ताजमहल संसार के सर्व प्रसिद्ध सात आश्चर्यों में से एक है। उसके निर्माण में प्रतिदिन २० हजार मजदूर काम करते थे, इतिहासकारों के अनुसार उसका निर्माण उस समय की लागत के अनुसार ६ करोड़ रुपये में हुआ था। उसके निर्माण में साढ़े अट्ठारह वर्ष लगे। उसमें राजस्थान से आया संगमरमर, तिब्बत की नीलम मणि, सिंहल की सिपास्लाजुली मणि, पंजाब के हीरे, बगदाद के पुखराज रत्न लगे हैं। इतनी सारी व्यवस्था और साधन-सामग्री जुटाने में एक व्यक्ति की बुद्धि काम कर रही थी। वह था शाहजहाँ। ताजमहल की रचना के साथ शाहजहाँ चिरकाल तक अमर है।

कोरिया का मेलोलियम संसार का दूसरा आश्चर्य। ६२ हाथ लंबी उतनी ही चौड़ी चहारदीवारी के मध्य ४०-४० हाथ ऊँचे ३६ स्तंभ, जो नीचे मोटे पर ऊपर क्रमशः पतले होते गये हैं। सीढ़ियों पर नीचे से ऊपर तक संगमरमर की बहुमूल्य मूर्तियों की सजावट। प्रसिद्ध कलाकार पाइथिस और माटीराम द्वारा विनिर्मित इस समाधि मंदिर का निर्माण केवल एक व्यक्ति की इच्छित रचना है, वह थीं वहाँ की महारानी "आर्टीमिसिया"।

२० लाख रुपये की लागत से बनी २५ फुट ऊँची ओलंपिया की जुपिटर प्रतिमा एथेन के सम्राट् पैराक्लीज की हार्दिक इच्छा का अभिव्यक्त रूप है। इफिसास का डायना मंदिर चाँदफिन की कल्पना का साकार है, जो अजंता की २६ गुफाओं में ५ मंदिरों और २४ बौद्ध विहारों में प्रवरसेन युग के आचार्य सुनंद का नाम अंकित है। सिकंदरिया का प्रकाश स्तंभ सिकंदर के संकल्प का मूर्तिमान है। २६३ हाथ के घेरे में २२ फुट ऊँचे ठोस घेरे में खड़ा किया गया बैविलोन साम्राज्ञी ने बनवाया रोम का कोलोसियम, पीसा की मीनार, रोडस की पीतल की मूर्ति, मिस्त्र के पिरामिड, चार्टेज गिरजाघर, डेविड, मोजेज, सिस्टाइन, चैपिल पिंयेटा की प्रतिमाएँ, एफिल टावर (पेरिस), ह्वाइट हाउस (अमेरिका), लाल किला (दिल्ली) आदि

जितनी सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ हैं, उनके रचनाकार आला मस्तिष्क और भाव संपन्न आत्माएँ रही हैं। किसी भी सांसारिक निर्माण को स्वनिर्मित नहीं कहा जा सकता, इसी से रचना के साथ रचनाकार का नाम अविच्छिन्न रूप से चलता है।

यह छोटे-छोटे उत्पादन बिना कर्त्ता के अभिव्यक्ति नहीं पा सके होते, तो इतना सुंदर संसार जिसमें प्रातःकाल सूरज उगता और प्रकाश व गर्मी देता है, रात थकों को अपने आँचल में विश्राम देती, तारे पथ-प्रदर्शन करते, ऋतुएँ समय पर आती और चली जाती हैं। हर प्राणी के लिए अनुकूल आहार, जलवायु की व्यवस्था, प्रकृति का सुव्यवस्थित स्वच्छता अभियान सब कुछ व्यवस्थित ढंग से चल रहा है। करोड़ों की संख्या में तारागण किसी व्यवस्था के अभाव में अब तक न जाने कब के लड़ मरे होते। यदि इन सबमें गणित कार्य न कर रहा होता, तो अमुक दिन, अमुक समय सूर्य ग्रहण—चंद्र ग्रहण, मकर संक्रांति आदि का ज्ञान किस तरह हो पाता ? यह सोद्देश्य कर्म और सुंदरतम रचना बिना किसी ऐसे कलाकार के संभव नहीं थी, जो संपूर्ण ब्रह्मांड को एकरस देखता हो, साधना जुटाता हो, न्याय करता हो और जीव मात्र को पोषण-संरक्षण प्रदान करता हो।

नियामक के बिना नियम व्यवस्था, प्रशासक के बिना प्रशासन चल तो सकते हैं, पर आधे घंटे से अधिक नहीं, जबकि पृथ्वी को ही अस्तित्व में आये करोड़ों वर्षों बीत चुके। परिवार के वयोवृद्ध के हाथ सारी गृहस्थी का नियंत्रण होता है। गाँव का एक मुखिया होता है, तो कई गाँवों के समूह की बनी तहसील का स्वामी तहसीलदार, जिले का मालिक कलेक्टर, राज्य का गवर्नर और राष्ट्र का राष्ट्रपति। मिलों तक के लिए मैनेजर, कंपनियों के डाइरेक्टर न हों, तो उनकी ही व्यवस्था ठप्प पड़ जाती है और उसका अस्तित्व डाँवाडोल हो जाता है; फिर इतनी बड़ी और व्यवस्थित सृष्टि का प्रशासक, स्वामी और मुखिया न होता, तो संसार न जाने कब का विनष्ट हो चुका होता ? जड़ में शक्ति हो सकती है, व्यवस्था नहीं।

नियम सचेतन सत्ता ही बना सकती है, सो इन तथ्यों के प्रकाश में परमात्मा का विरद् चरितार्थ हुए बिना नहीं रहता।

२ फरवरी, १९४७ के नेशनल हेरल्ड में एक लेख छपा था—"वैज्ञानिक, भगवान् में विश्वास क्यों करते हैं ?" इस लेख में विद्वान् लेखक ने बताया है कि संसार का हर परमाणु तक निर्धारित नियम पर काम करता है, यदि इसमें रत्ती भर भी अव्यवस्था और अनुशासनहीनता आ जाये, तो विराट् ब्रह्मांड एक क्षण को भी नहीं टिक पाता। एक कण के विस्फोट से अनंत प्रकृति में आग लग जाती और संसार अग्नि ज्वालाओं के अतिरिक्त कुछ न होता।

नियामक-विधान, किसी मस्तिष्कीय सत्ता का अस्तित्व में होना प्रमाणित करता है। हमारे जीवन का आधार सूर्य है। वह १० करोड़ ६० लाख मील की दूरी से अपनी प्रकाश किरणें भेजता है, जो ८½ मिनट में पृथ्वी तक पहुँचती हैं। दिन भर में यहाँ के वातावरण में इतनी सुविधाएँ एकत्र हो जाती हैं कि रात आसानी से कट जाती है। दिन-रात के इस क्रम में एक दिन भी अंतर पड़ जावे, तो जीवन संकट में पड़ जाये। सूर्य के लिए पृथ्वी समुद्र में एक बूँद का-सा नगण्य अस्तित्व रखती है; फिर उसकी तुलना में रूस के साइबेरिया प्रांत में एक गड़रिये के घर में जी रही एक चींटी का क्या अस्तित्व हो सकता है, पर वह भी मजे में अपने दिन काट लेती है।

लेकिन परमात्मा कभी-कभी अपने अस्तित्व के दिग्दर्शन के लिए संहारक क्षमता का उपयोग भी करता है। ऐसे दृश्य उपस्थित होते हैं कि मनुष्य तो क्या समस्त जीव जगत् तक थर्रा उठता है। इस स्थिति का उद्देश्य मानव की प्रसुप्त आध्यात्मिकता को झकझोरना कहा जा सकता है। जैसे पिता बालक की उद्दंडता तब तक बर्दाश्त करता है, जब तक और किसी का अहित न हो। कभी-कभी ही डराने, धमकाने, अनुशासन में बनाये रखने के लिए उसे डाँटा जाता है। ईश्वर भी इसी प्रकार अपनी संतानों को अनुशासन में रखने के लिए समय-समय पर धमकाता, डराता और

दंड देता रहता है। 'ईश' का अर्थ है—अनुशासन। इस सृष्टि के कण-कण में एक अनुशासन संव्याप्त है। मनुष्य अपने शरीर और मस्तिष्क को जितने अंश में अनुशासित रख सकता है, वह उतने अंश में अपने आपका ईश्वर है। इस संसार में अनुशासनहीन कुछ भी नहीं है। आकाशस्थ ग्रह-नक्षत्र एक अनुशासन में बँधे हैं। उत्पादन, अभिवर्धन और परिवर्तन की सुव्यवस्था सर्वत्र देखी जा सकती है। प्राणी और पदार्थ एक-दूसरे के पूरक बनकर रह रहे हैं। प्रजनन और काम-कौतुक में प्रत्येक वर्ग की वंश वृद्धि का कैसा अद्‌भुत समन्वय है, जिसे देखकर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। परमाणु समूह का अपने क्रिया-कलाप में बिना दूसरों से टकराये संलग्न रहना, कितना विधिवत और कितना व्यवस्थित है ? शरीर की कोशाएँ अपने आप में एक स्वतंत्र व्यक्तित्व का परिचय देती हैं और सघन सहयोग के सहारे शरीर की गतिविधियों का सुसंचालन करती हैं। किसी भी क्षेत्र से—किसी भी दिशा में—दृष्टि पसारकर देखा जाय, सर्वत्र अनुशासन संव्याप्त है। बाढ़, भूकंप, आँधी, तूफान जैसी दुर्घटनाएँ भी अनायास नहीं होतीं, उनके मूल में भी कोई सिद्धांत काम करते हैं और उन्हीं के आधार पर वे घटनाएँ घटित होती हैं; जिन्हें यदा-कदा होने के कारण हम आकस्मिक, अप्रत्याशित समझते और आश्चर्य करते हैं। इस अनुशासन को भी 'ईश्वर' नाम दिया जा सकता है।

लहरों का पृथक् अस्तित्व देखने पर भी वे वस्तुतः समुद्र की विशाल जलराशि की ही छोटी-छोटी इकाइयाँ होती हैं। किरणों का समन्वय ही सूर्य है। व्यक्तियों के समूह को समाज कहते हैं। सृष्टि के सबसे छोटे घटक अंड या अणु कहलाते हैं, इन्हीं का विशाल समुदाय ब्रह्मांड है। आत्माओं की सामूहिक चेतना परमात्मा है। हम हवा के विशाल समुद्र में उसी प्रकार साँस लेते और जीते हैं, जिस प्रकार मछलियाँ किसी जलाशय में अपना निर्वाह करती हैं। प्राणियों की समग्र सत्ता ब्रह्म है। अणुओं का समुदाय ब्रह्मांड। प्राणी और पदार्थों की सत्ता दीखती तो स्वतंत्र है, पर वस्तुतः वह एक ही

विशाल महाप्राण के अनंत संसार से अपना पोषण प्राप्त करते हैं। उसमें उगते, बढ़ते और बदलते रहते हैं। इस महाप्राण को—महान् अनुशासन को ईश्वर कहा जा सकता है।

न तो पैर को पैर देख पाते हैं और न हाथ को हाथ। आँखों की ज्योति ही दोनों को देख सकने में समर्थ होती है। आँखें स्वयं ही इस ज्योति से प्रकाशवान होती हैं, तो भी वे अपने आलोक को देख सकने में समर्थ नहीं होतीं। हाथ के लिए आँख की ज्योति का देख सकना, तो और भी कठिन है। जड़-पदार्थों से बने इंद्रिय समूह से, यंत्र उपकरणों से उस परम चेतन ज्योति को कैसे देखा जाय ? यह संभव न होने से ही यदि ईश्वर की सत्ता मानने से इनकार किया जाए तो बात दूसरी है, अन्यथा यदि सूक्ष्म और स्थूल की अनुभूति के लिए, प्रत्यक्ष से साक्षी न बनने की बात स्वीकार कर ली जाय, तो ईश्वर के अस्तित्व की अनुभूति पग-पग पर हो सकती है। जड़ से जड़ की नाप-तौल हो सकती है। चेतन-चेतन की अनुभूति पा सकता है। परिष्कृत, परिशोधित आत्मा के लिए यह तनिक भी कठिन नहीं है कि वह अपने अंतराल में विद्यमान ऐसी सत्ता का अनुभव करे, जो उसे निरंतर ऊँचा उठाने और आगे बढ़ाने का आह्वान करती है।

पैस्कल कहते थे कि—'जो हमारी पकड़ में नहीं आया, उसके संबंध में यह सोचना गलत है कि उसका अस्तित्व है ही नहीं।' अब से कुछ शताब्दियाँ पहले बिजली, रेडियो आदि की कहीं चर्चा तक नहीं थी। भूतकाल में भी कभी उनकी उपस्थिति देखी नहीं गयी थी। इन शक्तियों की कल्पना जब किन्हीं मस्तिष्कों में उदय हुई, तब भी कोई ऐसे प्रमाण नहीं थे, जिनसे उनकी उपस्थिति निश्चित रूप से सिद्ध की जा सके। फिर भी अनस्तित्व से अस्तित्व की संभावना स्वीकार की गयी और खोजें चल पड़ीं। विभिन्न आविष्कार इस प्रकार प्रकट हुए हैं।

ईश्वर के अस्तित्व से मात्र इस आधार पर इनकार करना अयोग्य है कि वह इंद्रियों और यंत्रों की पकड़ में नहीं आता। ईश्वर

तो चेतन है। जड़-जगत् की भी अनेकों शक्तियाँ पर्दे के पीछे से झाँकती हैं और अपने आभास का संकेत करती हैं। शोध-कर्त्ता इन्हीं संभावनाओं पर आस्था रखकर इतना श्रम, समय और धन खर्च कर रहे हैं। यदि यह मानकर चला जाए कि जिनका प्रत्यक्ष होगा उन्हीं की संभावना स्वीकार की जाएगी, तब तो विज्ञान की प्रगति का सारा आधार ही समाप्त हो जाएगा। तब उपलब्धियों का प्रयोग भर होता रहेगा। इन शोधों के लिए चेष्टा करना तो दूर, उनकी कल्पना तक उपहासास्पद बन जायगी।

यह सब सत्य इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं कि संसार को बनाने वाला अद्भुत गणितज्ञ, विलक्षण इंजीनियर, सुयोग्य चिकित्साधिकारी, मौसमवेत्ता और परमाणु वैज्ञानिक है, उस सत्ता के अस्तित्व से इनकार करना अपने आप को पतन में धकेलने के बराबर है। उसे प्राप्त करने का प्रबल पुरुषार्थ आवश्यक है, जिसने उसे पा लिया उसने अपना जीवन धन्य कर लिया समझना चाहिए।

सर्वनियामक सत्ता की प्रबंध व्यवस्था का पता जीवन के आविर्भाव से ही चल जाता है। जीवन की उपयोगी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सृष्टि में ऐसा प्रबंध है कि वे सरलतापूर्वक पूरी हो जाया करें। साँस के बिना प्राणी एक क्षण को भी जीवित नहीं रह सकता, सो वह प्रचुर मात्रा में सर्वत्र उपलब्ध है। उसके बाद जल की आवश्यकता है, उसके लिए थोड़ा प्रयत्न करने से ही काम चल जाता है। तीसरी आवश्यकता अन्न की है, सो उसके लिए साधन न जुटा सकने वाले प्राणियों के लिए फल-फूल की प्राकृतिक व्यवस्था है, वहीं बुद्धिधारी जीव थोड़े प्रयत्न से अपनी आवश्यकता पूरी कर लेते हैं, इसके बाद के समस्त उत्पादन आवश्यकता के अनुपात में प्रयत्न और परिश्रम से प्राप्त होते रहते हैं। इन सार्वभौम आवश्यकताओं की पूर्ति के बिना संचालक-व्यवस्थापक के कैसे संभव हो सकती थी ?

नैतिकता के सर्वमान्य सिद्धांतों से न केवल जीव समुदाय जुड़ा है, अपितु कर्त्ता ने वह अनुशासन स्वयं पर भी पूरी तरह लागू

किया है। भ्रूण जैसी अत्यधिक कोमल और संवेदनशीलता को विकसित होने के लिए खुला छोड़ दिया जाता, तो प्राणधारी के लिए उपयोगी वायु, ताप और अन्य प्राकृतिक परिस्थितियाँ ही उसे नष्ट-भ्रष्ट कर डालतीं, सो उसके लिए अति वातानुकूलित और सर्व सुविधा संपन्न निवास माँ के गर्भाशय की व्यवस्था, क्या किसी अत्यधिक प्रबुद्ध सत्ता के अस्तित्व का प्रमाण नहीं ? जहाँ चारों तरफ से बंद कोठरी में ही उसे विकास की समस्त सुविधाएँ उचित मात्रा में मिलती रहती हैं। जन्म के पूर्व ही उसके लिए संतुलित आहार माँ के दूध जैसा उपलब्ध कराकर, उसने अत्यधिक करुणा दरसाई। असहाय-असमर्थ शिशु के लिए न केवल भौतिक सहायताएँ, अपितु उसके लिए जिन भावनात्मक सुविधाओं की आवश्यकता थी, वह समस्त उसे कुटुंब में, समुदाय और समाज में मिल जाती हैं। इस तरह जीवनसत्ता परिपक्व रूप में सामने आ जाती है, इतने पर भी यह कितने आश्चर्य की बात है कि दूसरों के सहारे बढ़ा-विकसित हुआ जीव न केवल सामाजिक कर्त्तव्यों के प्रति कृतघ्नता का परिचय देने लगता है, अपितु अपने परमपिता, अपनी मूलसत्ता को ही भुला बैठता है।

इतने पर भी उस दयालु पिता ने उस शिशु के यौवन में प्रवेश करते ही उसकी पितृत्व, कामेच्छा और भावनात्मक सहयोग की पूर्ति के लिए जोड़ी मिलाने, नर को नारी में और नारी को नर में अपनी पूर्णता प्राप्त करने की सुविधा जुटाई, रोग-निरोध की तथा सांसारिक प्रतिकूलताओं में अपने अस्तित्व की रक्षा की जन्म-जात सुविधाएँ भी प्रदान की हैं। रोगों से लड़ने की शक्ति रक्त कणों में, शारीरिक अवयवों की सुरक्षा त्वचा के द्वारा, देखने के लिए आँखें, सुनने के लिए कान और विचार करने के लिए बढ़िया मस्तिष्क। इतनी सुंदर मशीन आज तक न कोई बना सका और न बना सकना संभव है, जो इच्छानुसार हर परिस्थिति में मुड़ने, लचकने, सँभलने में सक्षम है। आँख जैसी रैटिना, कान जैसा पर्दा, गुर्दे जैसा सफाई अधिकारी, हृदय जैसे पोषण-संस्थान और पाँव जैसा सुंदर

आर्क बनाने वाली सत्ता कितनी बुद्धिमान होगी, इसकी तुलना न किसी इंजीनियर से हो सकती है, न डॉक्टर से। वह प्रत्येक कला-कौशल का ज्ञाता, सर्व-निष्णात और सर्व प्रभुतासंपन्न दानी केवल परमात्मा ही हो सकता है, इससे कम मानना न केवल उस परमात्मा की अवमानना होगी, अपितु यह एक प्रकार से स्वयं का ही आत्मघात होगा।

इतने पर भी उसके अनुदान समाप्त नहीं हो जाते, अग्नि में चिनगारी, पदार्थ में परमाणु, सूर्य में किरणों की तरह वह स्वयं भी मनुष्य की हृदय गुहा में बैठकर, उसे प्रतिपल आत्मोत्कर्ष की प्रेरणा देता रहता है। गलत मार्ग पर चलने से पहले ही उसकी प्रेरणा रोकती है; पर मनुष्य अंतःकरण की उस पुकार को अनसुनी कर स्वेच्छाचारिता बरतता और उस अपराध का दंड, रोग, शोक, क्लेश, कलह और मानसिक संताप के रूप में भुगतता रहता है। फिर भी उसकी वासनाएँ शांत नहीं होती, वह अपनी वासनाओं की, तृष्णा की, अतृप्त कामनाओं की प्यास बुझाने के लिए मानवेतर योनियों में भटकता है, तो भी उसकी दया, करुणा, उदारता एक पल को भी साथ नहीं छोड़ती और उसे निरंतर ऊपर उठने, कामनाओं से मुक्ति पाकर शाश्वत, सनातन और दिव्य आनंद की प्राप्ति के लिए प्रेरित करती रहती है। फिर भी इस सत्ता के अजस्र अनुदानों की ओर से आँख फेरकर मनुष्य प्यासा का प्यासा बना रहता है। माया के मूढ़ भ्रम-जाल में पड़ा जीवन के बहुमूल्य क्षण मिट्टी के मोल नष्ट करता रहता है।



आस्तिक दर्शन के वैज्ञानिक आधार

एक प्रश्न का सही उत्तर भी सदैव एक होता है, दो नहीं। यदि उत्तर दो हों, तो उनमें से एक का असत्य होना अवश्यंभावी है, यह एक बात हुई। जिसका उत्तर सही होता है, वह उत्तीर्ण विद्वान् और विचारवान घोषित किया जाता है, जिसका हल त्रुटिपूर्ण होता है, यह माना जाता है कि उसका अध्ययन अपूर्ण रहा—यह दूसरी बात हुई। एकिक नियम से इन दोनों बातों को यों भी कहा जा सकता है कि विद्वान्, विचारवान् और अध्ययनशील व्यक्तियों के निष्कर्ष मान्य होने चाहिए, जबकि जिन्होंने किसी विषय का स्पर्श ही न किया हो, उसके उत्तर से संतुष्ट नहीं होना चाहिए।

परमात्मा का अस्तित्व है या नहीं, इस बात की पुष्टि के लिए यदि उपरोक्त सिद्धांत को कसौटी पर कसें, तो लगता है मात्र सतही ज्ञान वाले या निषेध-बुद्धि व्यक्तियों ने ही उपरोक्त मान्यता का खंडन किया है, विज्ञानवेत्ताओं में अधिकांश सभी ने या तो इस संबंध में प्रायोगिक तौर पर अपनी अनभिज्ञता व्यक्त की है या फिर उन्होंने पूरी तरह ईश्वरीय सत्ता पर विश्वास व्यक्त किया है।

ईश्वर की मान्यता सृष्टि का सर्वोच्च विज्ञान है और परम सत्य की खोज-विज्ञान का इष्ट। अतएव वैज्ञानिकों के निष्कर्षों की उपेक्षा करने का अर्थ असत्य का समर्थन और सत्य से इनकार के अतिरिक्त और कुछ नहीं होगा। अखंड-ज्योति में समय-समय पर वैज्ञानिकों की वह सम्मतियाँ प्रकाशित की जाती रही हैं, जिनमें उन्होंने विराट् के प्रति, असीम के प्रति श्रद्धावश, ज्ञान के अगाध विस्तार और मानवीय विवेक के आधार पर समर्थ सत्ता के औचित्य को स्वीकार किया है। ऐसा ही जोरदार प्रश्न एक बार अमेरिका के वैज्ञानिकों के सम्मुख वहाँ के बुद्धिवादियों ने उठा दिया। उस समय 'न्यूयार्क एकेडेमी ऑफ साइंसेज' के तत्कालीन अध्यक्ष—वैज्ञानिक एम्सक्रेशी मारिशन ने उसका उत्तर इतने तार्किक और व्यवस्थित

ढंग से दिया, जिससे डारविन के सिद्धांत को मानने वालों में तहलका मच गया। ईश्वरीय अस्तित्व के प्रतिपादन में उन्होंने जो सात मूलभूत आधार निश्चित किये हैं, वे इतने सशक्त और प्राणवान हैं, जिनसे एकाएक तो कोई पूर्वाग्रह ग्रस्त नास्तिक भी इनकार नहीं कर सकता। यह सातों सिद्धांत भारतीय सिद्धांत सृष्टिकर्त्ता के (१) सृजनकर्त्ता (२) पालनकर्त्ता (३) संहारकर्त्ता तीनों स्वरूपों का प्रतिपादन करते हैं।

योरोप तथा एशिया के वैज्ञानिकों के समक्ष अपनी बात प्रस्तुत करते हुए मारिशन महोदय ने बताया कि सृष्टि संरचना पर दृष्टि दौड़ाते हैं, तो ऐसा लगता है कि सारा निर्माण किसी गणितज्ञ, सूझ-बूझ वाले, बुद्धिमान चीफ इंजीनियर की देख-रेख, प्लानिंग के अंतर्गत हुआ है। सृष्टि का प्रादुर्भाव एकाएक, अकस्मात या दुर्घटनावश, यों ही नहीं हो गया। रेल की रेल से, मोटर से, पुल से दुर्घटना हो जाती है, तो ध्वंस होता है, विनाश होता है, त्राहि-त्राहि मचती है, जबकि संसार में अच्छी से अच्छी और उससे अच्छी प्रसन्नतादायक रचनायें होती चली आती हैं, ध्वंस के स्थान पर व्यवस्था दिखाई देती है। प्रसन्नता, प्रफुल्लता, उल्लास, उत्साह और प्राणों की छलकन दिखाई देती है। दुर्घटना कभी-कभी होती है, आकस्मिकता का नंबर करोड़ों बार के प्रयोगों में कहीं एक बार आता है। उदाहरण के लिए दस-दस नये पैसे के दस सिक्के लें। उन पर एक से दस के नंबर डाल दें। सारे सिक्कों को दोनों हथेलियों का घोंसला बनाकर देर तक हिलायें और उन्हें फिर एक गड्डी में रख दे। यह क्रिया सौ-दो सौ बार दुहरायें, तो यह संभव है कि एक नंबर का सिक्का ठीक एक नंबर पर ही आ जाये। हजार दो हजार बार में एक नंबर के बाद दूसरा भी क्रम में आ सकता है, चार-पाँच हजार बार में संभव है, एक-दो तीन नंबर वाले सिक्के पर एक ही क्रम में आ जायें। एक से दस तक के सभी सिक्के भी क्रम में आ जायें। उस स्थिति के लिए लाखों-करोड़ों नहीं, असंख्य बार यह क्रिया दोहरानी पड़ सकती है। यदि सिक्कों

को आँखों से देखकर, ज्ञान से उनके नंबर पढ़कर क्रम बार लगायें, तो एक से अधिक बार की क्रिया दोहरानी नहीं पड़ेगी। प्रकृति की सृष्टि की सुव्यवस्थायें इस बात की प्रमाण हैं कि यह सारी रचना-प्रकाश में, बुद्धि के द्वारा देख-सुन-समझ और निष्कर्षों को ध्यान में रखकर की गयी है।

सूर्य, जीवन का स्रोत और प्राणीय चेतना का आधार माना गया है। वह पृथ्वी से १० करोड़ ६० लाख मील दूर है और उसकी सतह का तापमान १२००० डिग्री फारेनहाइट का है। पहले तो यही बात स्पष्ट है कि यदि इस दूरी को थोड़ा भी कम कर दिया जाता, तो पृथ्वी में इतनी भयंकर ऊर्जा होती कि न तो यह वृक्ष-वनस्पति होती और न प्राणि जगत्। जीवन के लिए जितने ताप की आवश्यकता है उतना, इतनी ही दूरी में संतुलित रह सकता। यही नहीं कुछ ऐसी किरणें भी हैं, जो इतनी दूर पर भी विनाश कर सकती थीं, उनसे रक्षा के लिए वायुमंडल [आइनोस्फियर] के रक्षा कवच में पृथ्वी को बंद कर दिया गया। बात इतने से भी बनती नहीं थी, यदि पृथ्वी को स्थिर रखा गया होता, तब भी यहाँ इतना अधिक ताप आ जाता कि लोग भाड़ की गर्मी में भुन जाने वाले चने की तरह जलकर फुटका हो जाते। इस दृष्टि से पृथ्वी को जान-बूझकर उसकी अपनी ही कक्षा में प्रति घंटे एक हजार मील की गति से घुमा दिया गया, जिससे मरुतदेव गतिमान हुए और उन्होंने ताप और शीत का नियंत्रण प्रारंभ कर दिया। कदाचित इस गति को १००० की अपेक्षा १०० मील प्रति घंटे कर दिया गया होता, तो इसका अर्थ यह होता कि पृथ्वी के दिन और रात १२०-१२० घंटे के होने लगते। १२ घंटे की गर्मी और सक्रियता से थककर चकनाचूर हो जाने वाले मनुष्य को दस गुने बड़े दिन को काटना ही कठिन पड़ जाता, ऊपर से मध्याह्न की किरणें इतनी वीभत्स अग्नि वर्षा करतीं कि मिट्टी में भी आग लग जाती, और वह स्वयं भी जलकर या तो तरल लौ की शक्ल में हो जाती या भाप बनकर उड़ जाती। रात में यही स्थिति ठीक उलटी अर्थात्

हिम-प्रलय जैसी होती। उस स्थिति में जीवन की कल्पना करना ही कठिन होता है। जो बात सूर्य की दूरी से ऋतु नियंत्रण पर लागू होती है, वही चंद्रमा की दूरी से, समुद्र के नियंत्रण पर। इस दूरी में थोड़ा भी अंतर पड़ने से चंद्रमा ही पृथ्वी को नष्ट-भ्रष्ट कर डालता।

उस बड़े इंजीनियर का रेखागणित का ज्ञान तो उस समय आश्चर्यचकित कर देता है, जब पता चलता है कि पृथ्वी अपने ही कक्ष में २३$\frac{१}{२}$ [अंश] झुकी हुई है। यदि ऐसा न होता, तो महासागरों का सारा जल वाष्पीभूत होकर कुछ उत्तरी ध्रुव में भाग जाता कुछ दक्षिणी ध्रुव में। फिर न यह सुहाने बादल आते, न रिमझिम वर्षा होती, न झरनों की झरझर, न नदियों की कलकल, पौधों का बढ़ना, फूलना-फलना सारी शोभा विनाश के गर्त में डूब जाती।

पृथ्वी कुल दस फुट मोटी होती, तो जीव-जगत् के लिए ऑक्सीजन ही संभव न होता। समुद्र दस फुट गहरा होता, तो कार्बन डाई ऑक्साइड और ऑक्सीजन का संतुलन ही न बैठता, वायुमंडल विरल होता तो तारों का उल्कापात इस तरह होता, मानो किसी बगीचे में आम टपकते हों। सारी धरती लहू-लुहान होती, सौंदर्य नाम की तो यहाँ कोई सत्ता ही नहीं होती।

अपना दूसरा तर्क प्रस्तुत करते हुए डा. मारिशन ने बताया कि जिन दिनों डारविन विकासवाद सिद्धांत प्रतिपादित करने में जुटे थे, उन दिनों "प्रोटोप्लाज्मा" या "कोशिका विज्ञान" का प्रादुर्भाव नहीं हो पाया था। इस विज्ञान से जीवन का सूक्ष्मतम स्वरूप आया और यह सिद्ध हो गया कि कोशिका उसी तरह का एक ब्रह्मांड है जैसा हमारा बाह्य दृश्य ब्रह्मांड। उसमें से नाभिक की इच्छा से प्लाज्मा की हलचल होती है, स्वयं साइटोप्लाज्मा से नाभिक नहीं बनता। इसे यों समझ सकते हैं कि दृश्य प्रकृति का निर्माण सूर्य करता है। इस दृश्य प्रकृति ने सूर्य का निर्माण नहीं किया। यह चेतना ही जीवन है और भार न होने पर भी इतना

शक्तिशाली है कि पौधे में अभिव्यक्त होता है, तो चट्टान को फोड़कर ऊपर आ जाता है। इतना बड़ा कलाकार है कि फूलों में तरह-तरह के रंग भरता रहता है। प्रत्येक जीव को समूह गान की प्रेरणा देकर उससे अपने आपको महान संगीतज्ञ और प्रत्येक फूल में अलग-अलग तरह की गंध भरकर, उसने अपना महान रसायनज्ञ (केमिस्ट) स्वरूप ही दर्शा दिया है।

बाजार की किसी खिलौने वाली दुकान में जाते हैं, तो झांझ बजाने वाली गुड़िया, नाच दिखाने और ढपली बजाने वाले बंदर, दौड़ने वाले घोड़े, तेज गति से दौड़ने वाली बसें, रेलें और हैलीकॉप्टर आदि तरह-तरह के खिलौने देखकर मन प्रसन्न हो उठता है। सामान्य दृष्टि में यह खिलौना चाभी भर देने से चलने वाले होते हैं। पर विचारशील व्यक्ति उसे इंजीनियरिंग बुद्धि का कौशल मानते और उन कारीगरों की प्रशंसा करते हैं, जिन्होंने उनके भीतर इस तरह की मशीनरी का निर्माण कर दिया, जिससे निर्जीव घोड़े, प्लास्टिक के बने बंदर भी सजीव से गति करते दिखाई देने लगते हैं।

सृष्टि में दृष्टि दौड़ायें तो लगता है, यहाँ भी एक विलक्षण इंजीनियरिंग का कमाल भरा हुआ है। खिलौनों की मशीन की तुलना प्रकृति के नन्हें-नन्हें जीव-जंतुओं से लेकर विशालकाय पशुओं तक की अंतःप्रवृत्तियों से की जाती है। इसमें मनुष्यों की तरह की विचार-शक्ति नहीं होती, उनमें लिखने-पढ़ने या गूढ़ विषयों को सोचने-समझने की भी सामर्थ्य नहीं होती, पर जिस तरह चाभी भरे हुए खिलौने वैसी ही गति करने लगते हैं, जैसे उनके मूल उपमान, तो यह विश्वास न करने का कोई कारण शेष नहीं रह जाता कि सृष्टि का कोई नियंता नहीं है। अंतःप्रवृत्तियों का यह इतिहास इतना अचरज भरा है कि उसमें सिवाय सृष्टि-सृजेता के सर्वज्ञ सर्व कुशल और सर्वशक्तिमान होने के अतिरिक्त दूसरी बात ही मस्तिष्क में नहीं आती। अस्तित्व में न होने की बात तो बिल्कुल ही गले नहीं उतरती।

सालमन मछली वर्षों तक समुद्र में रहती है और जब कभी अपने जन्म स्थान की याद करती है, तो समुद्र से चलकर अनेक बड़ी नदियों, सहायक नदियों की यात्रा करती हुई ठीक उसी स्थान पर पहुँच जाती है, जहाँ उसका जन्म हुआ था। यदि उसे विपरीत दिशा में मोड़ने का प्रयत्न भी किया जाये या धोखा देने का प्रयास किया जाये, तो भी उसे बहकाया नहीं जा सकता, वह फिरकर लौटेगी अपने सही स्थान को ही।

टिड्डियाँ किसी उपयुक्त स्थान पर अंडे देकर उड़ जाती हैं। पीछे बिना अभिभावकों की देखरेख के अंडों से बच्चे निकल आते हैं और अपने पूर्वजों के पीछे-पीछे यात्रा पर उसी दिशा में चल पड़ते हैं और कुछ समय पश्चात् अपने पितरों से जा मिलते हैं।

प्रवासी पक्षी एक ऋतु कहीं गुजारते हैं, दूसरी के लिए कठिन यात्रायें करके ठीक उसी स्थान पर जा पहुँचते हैं, जहाँ उनके वंशधर आते जाते रहे हैं। यह सारे कार्य अंतःप्रवृत्ति के सहारे चलते हैं। यह प्रवृत्तियाँ और कुछ नहीं, वह चाभियाँ हैं, जो नियंता ने उनमें पहले से भरकर छोड़ दी हैं।

ईल मछली इस तरह का सर्वाधिक आश्चर्यजनक उदाहरण है। दुनिया भर की सभी ईलें चाहे वह ग्रेट वियर की हों, या काश्मीर की डल झील की, अंडे-बच्चे वे अटलांटिक के बारमुड़ा क्षेत्र में जहाँ समुद्र संसार में सबसे गहरा है, में ही देती हैं। यह वही स्थान है, जहाँ से पृथ्वी किसी ऐसे ब्रह्मांडीय शक्ति-प्रवाह से जुड़ी है, जहाँ के आकाश में गया कोई भी जहाज आज तक लौटा नहीं। यह कहाँ अंतर्धान हो जाते हैं ? वह आज तक भी कोई जान नहीं पाया।

झीलों की ईलें, वहाँ से निकलने वाली नदियों से होकर समुद्र और समुद्र से अटलांटिक महासागर और वहाँ से बारमुड़ा पहुँचती हैं, वहाँ बच्चे देकर अपनी जीवन लीला समाप्त कर देती हैं। जिस मछली ने कोई भूगोल नहीं पढ़ी, जिसे महाद्वीपों का ज्ञान नहीं, वही

ईलें यहाँ जन्म लेने के उपरांत अपने माता-पिता के देश चल देती हैं और बड़े-बड़े महासागर पार कर ठीक वहीं जा पहुँचती हैं, जहाँ उनके माता-पिता कभी जीवनयापन किया करते थे।

ततैया की तरह का "वाष्प कीड़ा" ऐसा जीव है, जिसके बच्चों को विकास के लिए जीवित जीव का ही मांस चाहिए, मृत का नहीं। "वाष्प कीड़ा" घास के कीड़े को पकड़ता है और उसे मिट्टी में इस तरह गाड़ देता है, जिससे वह मरता नहीं, वरन् मूर्च्छित हो जाता है। इस तरह जीवित किंतु अचेतन घास के कीड़े से ही यह बच्चे अपना विकास कर लेते हैं। यह बुद्धि का खेल नहीं है वरन् यह मात्र भरी हुई चाभी का खेल है। यदि बुद्धि की बात होती, तो हाथी विधिवत खेती कर रहे होते, शेर अपने बच्चों के लिए विद्यालय खोले हुए होते, भेड़ियों की मनुष्य से मित्रता हो गयी होती, बंदर बगीचों के मालिक हो गये होते। ठीक उसी तरह जिस तरह चाभी भरा घोड़ा आदमी को देशाटन करा सकता है, हर मनुष्य की अपनी रेलगाड़ी होती और हैलीकॉप्टर से कम में कोई यात्रा नहीं कर रहा होता।

मनुष्य में बौद्धिक क्षमताओं की असीम संभावनायें, परमात्मा के अस्तित्व का चौथा बड़ा प्रमाण है। इस इलेक्ट्रॉनिक युग में जब कि दुनिया भर के सारे कार्य कंप्यूटर करने लगे हैं, मानवीय बुद्धि की तुलना में सभी हतप्रभ हैं। गणित के उतने हल, जितनी जानकारियाँ भरी गयी हों, कंप्यूटर प्रदान कर सकता है; पर किसी भी तरह की बात का तात्कालिक, परिस्थितिजन्य तथा ऐसा उत्तर जिसमें भावनायें, संवेदनायें भी जुड़ी हुई हों, वह दे नहीं सकता। शरीर की रचना मशीन जैसी नहीं, इस रूप में उसने साक्षात अपनी ही चेतना का एक अंश मानवीय प्राणों में घोल दिया है।

अब जबकि विज्ञान की एक नयी धारा जेनेटिक्स (आनुवंशिकी) का विकास हो रहा है, यह विलक्षणताएँ और भी स्पष्ट होने लगी हैं। उँगली के एक छोटे से पोर में ही २ हजार मिलियन अर्थात् २००००००००० (दो अरब) विचित्रताएँ और

शक्तियाँ गुण-सूत्र रूप में सन्निहित पाई गयी हैं, इसका अर्थ यह हुआ कि एक मनुष्य के शरीर में सारा ब्रह्मांड उस तरह समाया हुआ है, जिस तरह एक नन्हें बीज में वृक्ष की सारी संभावनाएँ विद्यमान रहती हैं। जैसे छोटे-से पिंड की दो आकृतियाँ अर्थात् एक जड़ प्रकृति, दूसरी चेतन—दो शक्तियाँ कार्यरत हैं, उसी तरह ब्रह्मांड में भी उस संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है। यह समष्टि चेतना ही परमात्मा हो सकती है। यदि यह दो तत्त्व भिन्न न होते, तो मृत्यु के बाद भी शरीर के सभी आवश्यक तत्त्व विद्यमान रहने पर भी मनुष्य चेतना का लोप नहीं हो जाता। प्रकृति अपने आप में अत्यंत समर्थ सत्ता है; पर जीव के उत्पादन की क्षमता उसमें नहीं है, यदि मनुष्य कर ले तो उसे भी चेतन अंश की क्रिया-अनुसंधान कहा जा सकता है।

अध्यात्म की, परमात्मा की कल्पना अपने आप में एक महान् शोध है। यह कल्पना नहीं, बुद्धि का गणितीय निर्णय है। इसमें भले ही अंक प्रयुक्त न हुए हों, उसमें बुद्धि की दौड़, उससे भी बहुत अधिक उत्कृष्ट स्तर पर हुई है। अज्ञात की कल्पना न कर सकें, इसका यह अर्थ नहीं कि अज्ञात होता ही नहीं, यह बात हमारे जीवन व्यवहार में प्रतिदिन देखने को मिलती रहती है। इस तरह मानवीय भावनाओं ने जिस समर्थ सत्ता का स्पर्श, अनुभूति के रूप में किया और उसके प्रति श्रद्धा के सतोगुणी सत्परिणाम प्राप्त किये, उसे यों ही झुठला देना, व्यक्ति विशेष के तात्कालिक संतोष का कारण हो सकता है, उससे न तो उसका न समाज और विश्व का हित हो सकता है। आज की समस्याओं का एकमात्र आधार यह अनास्था ही है, उसे दूर किया जा सके, तो मानवीय गरिमा अत्यंत समर्थ, समृद्ध और समुन्नत रूप में चरितार्थ हो सकती है।

गणितीय आधार पर ही नहीं, वस्तुपरक दृष्टि से भी ईश्वर का अस्तित्व संसिद्ध है। यह तो एक मानी हुई बात है कि वे सभी वस्तुएँ जो प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देतीं, अस्तित्वहीन नहीं हैं। उदाहरण के लिए हवा को किसने देखा ? आकाश का अनुभव किस प्रकार

का होता है ? ये दोनों तत्त्व दृष्टि और प्रत्यक्ष अनुभव में नहीं आते; फिर भी इनका अस्तित्व है। ईश्वर के अस्तित्व को केवल इसी आधार पर अस्वीकारा जाता है कि उसका कोई अनुभव नहीं होता। विज्ञान की ओर से भी ईश्वर का अनस्तित्व सिद्ध करने के लिए ढेरों तर्क दिये जाते हैं।

परंतु अब विज्ञान को भी अपनी मान्यतायें बदलनी पड़ रही हैं। विज्ञान क्या है ? प्रकृति के रहस्यों को समझने और उनसे लाभ उठाने के लिए की जाने वाली गवेषणा तथा प्रयोग। प्रत्यक्षवादी मान्यताओं के प्रति आग्रहशील रहने के कारण ही विज्ञान अपनी हठवादिता पर दृढ़ रहा है; लेकिन जैसे-जैसे प्रकृति के रहस्यों को गहराई से पढ़ा जाने लगा है, वैसे-वैसे अब विज्ञान को सृष्टि की नियामक-नियंत्रणकर्त्री चेतन सत्ता का अस्तित्व स्वीकार करने के लिए बाध्य-सा होना पड़ रहा है।

● परमात्मा सृष्टि का संचालक है

विश्व विख्यात वैज्ञानिक डॉ० अरिस्टोटल के लिए संसार में सबसे बड़ा आश्चर्य था, ब्रह्मांड का स्वरूप और उसकी नियमित गति। एक प्रकाश वर्ष की दूरी १८६००० × ६० × ६० × २४ × ३६५ $\frac{१}{४}$ = ५८,६६,७१,३६,००,००० मील होती है। सैद्धांतिक अनुमान है कि यह जो ब्रह्मांड दिखाई दे रहा है, वह ५० करोड़ प्रकाश वर्ष की दूरी (व्यास) में फैला हुआ है। हम जिस सूर्य के प्रकाश से अपना जीवन चलाते हैं, वह जिस आकाशगंगा (नेबुला) से प्रकाश लेता है, ऐसी-ऐसी दस करोड़ आकाशगंगायें अंतरिक्ष में प्रकाश फैलाती हुई अरबों सूर्यों को चमका रही हैं। इसमें अन्य ग्रह-नक्षत्रों की तो संख्या गिनी भी नहीं जा सकती।

इतना बड़ा संसार भी कितने नियम और व्यवस्था के साथ चल रहा है, और तो और हमारा मस्तिष्क गणित के द्वारा पहले ही ग्रह-नक्षत्रों के परिभ्रमण पथ पर होने वाले ग्रहण आदि संघातों का

पता लगा चुका होता है, इसका अर्थ है कि संसार अनियमित नहीं। इतने विराट् जगत् को घुमाने वाला कोई महान शक्तिशाली तत्त्व होना चाहिए। अरिस्टोटल का कथन है, "वह केवल ईश्वर ही हो सकता है। भगवान् के अतिरिक्त और किसी में यह शक्ति नहीं। परमात्मा सृष्टि का संचालक है।" यह उनकी मान्यता थी।

हर्बर्ट स्पेन्सर की दृष्टि में भगवान एक विराट्-शक्ति है, जो संसार की सब गतिविधियों का नियंत्रण उसी प्रकार करते हैं, जिस प्रकार मुखिया घर का, प्रधान गाँव का, कलेक्टर जिले का, गवर्नर प्रदेश का और राष्ट्रपति सारे राष्ट्र की भोजन, वस्त्र, निवास, सुरक्षा आदि की व्यवस्था करता है। उन्होंने कहा—"राज्य के नियमों का हम इसलिये आदर करते हैं; क्योंकि हमें राज्य की शक्ति से भय होता है। नैतिक नियमों का पालन न करने पर भी हमें भय लगता है, जबकि हम उसके लिए पूर्ण स्वतंत्र होते हैं, यह इस बात का प्रमाण है कि संसार में कोई सर्वोच्च सत्ता काम करती है, हम उसके परिचय में कभी न कभी रहे हैं; क्योंकि हम डरते हैं। निर्भीक व्यक्ति नैतिक व्यक्ति ही हो सकता है, इसलिये उसे संसार की व्यवस्था ईमानदारी और न्याय से करने वाला प्रजावत्सल तत्त्व होना चाहिए।"

सुप्रसिद्ध दार्शनिक कांट ने हर्बर्ट स्पेन्सर के कथन को और अधिक स्पष्ट किया है। वह लिखते हैं—"नैतिक नियमों की स्वीकृति ही परमात्मा के अस्तित्व का प्रमाण और पूर्ण नैतिकता ही उसका स्वरूप है। संसार का बुरे से बुरा व्यक्ति भी किसी-न-किसी के प्रति नैतिक अवश्य होता है। चोर डकैत भी नहीं चाहते कि कोई उनसे झूठ बोले, छल या कपट करे, जबकि वे स्वयं सारे जीवन भर यही किया करते हैं। अपने भीतर से नैतिक नियमों की स्वीकृति इस बात का प्रमाण है कि संसार केवल नैतिकता के लिए ही जीवित है, उसी से संसार का निर्माण, पालन और पोषण हो रहा है, इसलिये भगवान् नैतिक-शक्ति के रूप में माना जाने योग्य है।"

हिब्रू ग्रंथों में ईश्वर को 'जेनोवाह' कहा गया है। जेनोवाह का अर्थ है—'वह जो सदैव सत्य नीति ही प्रदान करता है। मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए दूसरों को ठगता देखा जाता है; पर पाया गया है कि ऐसा व्यक्ति कुछ ही दिनों में लोगों के आदर से, सम्मान से वंचित हो जाता है। कभी-कभी तो ऐसे लोगों की इसी जीवन में दुर्गति होते देखी गई है। इस सबका यह अर्थ है कि विश्व की संपूर्ण व्यवस्था किसी सत्य के आधार पर चल रही है। जो भी उससे हटने का प्रयत्न करता है, वह पीड़ित और प्रताड़ित होता है, जबकि इन नियमों पर आजीवन आरूढ़ रहने वाले व्यक्ति सांसारिक दृष्टि से कुछ घाटे में भी रहें, तो भी उनकी प्रसन्नता में कोई अंतर नहीं आता।

सत्य और नीति-निष्ठा द्वारा संसार का नियंत्रण करने वाली ऐसी शक्ति, जो प्रत्येक व्यक्ति की आकांक्षाओं में विद्यमान रहती है, वही ईश्वर है।

प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो की ईश्वरीय मान्यता भी लगभग ऐसी ही थी, वह कहते थे—"ईश्वर अच्छाई का विचार है।" संसार के प्रत्येक व्यक्ति यहाँ तक कि जीव-जंतुओं को भी अच्छाई की चाह रहती है। जहाँ अच्छाई होती है, वहीं आनंद रहता है। अच्छाई शरीर और सौंदर्य की, जो संयम और सदाचारों के द्वारा सुरक्षित हो, अच्छाई शरीर और वस्त्रों की, जो धोने और स्नान करने से सुरक्षित हो, अच्छाई वातावरण की, घर, गाँव और नगरों की, जो स्वच्छता और सफाई द्वारा सुरक्षित हो, अच्छाई प्रकृति की, जो हरे भरे पौधों और खिलते हुए रंग-बिरंगे फूलों, भोले-भाले पशु-पक्षियों के कलरव और उछल-कूद से सुरक्षित हो। इस तरह संसार में हम सर्वत्र अच्छाई के दर्शन करके प्रसन्नता अनुभव करते हैं। यही प्रभुत्व है, इन्हीं से आनंद मिलता है, इन्हीं से संसार में आगे का मजा आता है। सो भगवान को यदि मानें, तो उसे अच्छाई का वह बीज मानना पड़ेगा, जो आँखों को दिव्य मनोरम और बहुत प्यारा लगता।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक न्यूटन से एक बार उनके एक मित्र ने आश्चर्य व्यक्त करते हुए पूछा—"आप वैज्ञानिक होकर भी ईश्वर में आस्था रखते हैं ? उसकी प्रार्थना किया करते हैं ? यदि भगवान सचमुच है तो वह क्या है ?"

"ज्ञान" न्यूटन ने गंभीरतापूर्वक उत्तर दिया। उन्होंने कहा—"हमारा मस्तिष्क ज्ञान की खोज में जहाँ पहुँचता है, वहीं उसे एक शाश्वत चेतना का ज्ञान होता है। कण-कण में, जो ज्ञान की अनुभूति भरी हुई है, वह परमात्मा का ही स्वरूप है। सृष्टि का कोई कण चेतना से वंचित नहीं, परमात्मा इसी रूप में सर्वव्यापी है। ज्ञान की ही शक्ति से संसार का नियंत्रण होता है, विनाश करना चाहो तो भी ज्ञान की ही आवश्यकता होती है। परमात्मा इस रूप से ही सर्व शक्तिमान है। शरीर के एक-एक कोष (सेल्स) में ज्ञान की ही पैठ है और उससे कोई सूक्ष्म तत्त्व नहीं, जो अणु से अणु में भी प्रवेश कर सके, परमात्मा इस रूप में ही अनंत विस्तार के जगत् में समाया हुआ है।"

स्पिनोजा ने विज्ञान और दर्शन दोनों का अध्ययन करके बताया कि संसार में दो प्रकार की सत्तायें काम कर रही हैं, एक दृश्य, एक अदृश्य। एक का नाम है प्रकृति या पदार्थ, यह दिखाई देता है। दृश्य संसार प्रकृति की ही रचना है, अपना शरीर भी पदार्थ से बना है। इसमें भी धातुयें, खनिज, लवण, गैसें आदि भरी पड़ी हैं पर विचार उससे भिन्न है, यह दिखाई नहीं देता पर हम उसे हर घड़ी अनुभव करते हैं। हमारे जीवन की सारी क्रियाशीलता विचारों की ही देन है। विचार ठंडे पड़ते ही शरीर ठंडा पड़ जाता है। विचार मरे कि शरीर मर गया। मृत्यु के अंतिम क्षण तक विचार प्रक्रिया का बने रहना, यह बताता है कि विचार ही विश्व-व्यापी चेतना या ईश्वर है। विचार कभी नष्ट नहीं होते, ईश्वर भी अविनाशी है। निःसंदेह अविनाशी विचार ही भगवान हैं। या यों कहें कि भगवान् का स्वरूप, गुण और विचारमय ही हो सकता है, चाहे यह किसी शक्ति कणों के रूप में हो अथवा प्रकाश रूप में, पर

विचारों का अस्तित्व संसार में है अवश्य। हम सदैव ही उनसे प्रेरित, प्रभावित होते रहते हैं। विचारों को कोई भी व्यक्ति अपना नहीं कह सकता। फ्रायड को भी कहना पड़ा था कि, "विचार अवचेतन मन से आते हैं और मनुष्य का उस पर कोई नियंत्रण नहीं, वह कोई स्वतंत्र सत्ता है।"

वैज्ञानिक हीगल ने भी भगवान् को सामान्य इच्छाओं से उठा हुआ, इच्छाओं को भी नियंत्रण में रखने वाला परम विचार (एब्सोल्यूट आइडिया) बताया है। जिस प्रकार प्रत्यक्ष में देखने से हमारा मस्तिष्क एक प्रकार से विचारों का पुंज है, इसी के किसी कोने से विचारों का प्रवाह निरंतर चलता रहता है। इसी तरह सारे विश्व में फैले विचार किसी केंद्रीभूत सत्ता से प्रस्फुटित हो रहे हैं, जिस प्रकार सूर्य में ऑक्सीजन जलती रहती है और हीलियम के कण उछलते रहते हैं, उसी प्रकार संसार के किसी भाग से नियमित विचारों का निर्झर झरता रहता है। उस केंद्रीभूत सत्ता का नाम हीगल ने परमेश्वर बताया।

इमर्सन और वर्कले के मत में सब आत्माओं में श्रेष्ठ शक्ति का नाम ही परमात्मा है। उन्होंने तत्त्व-दर्शन का सहारा लिया था। सारा संसार कहीं से उधार प्राण और चेतना ले रहा है। यह चेतना और प्राण-शक्ति अपने मूलरूप में एक जैसी ही है। विचारग्रस्त होने के कारण वह अनेक जीवों के रूप में दिखाई देती है, पर आत्म-चेतना के सभी लक्षण मनुष्य और पशु तथा प्राणियों में समान हैं। जिस तरह बड़े विद्युत् घर से विद्युत् लेकर छोटे-छोटे बल्ब जलने लगते हैं, उसी प्रकार प्राणियों की चेतना भी किसी मूल तत्त्व से प्राण और प्रकाश लेकर अस्तित्व में आती है। जो सब आत्माओं का उद्‌गम है, वही परमेश्वर है। यदि आत्माओं का स्वरूप प्रकाश है, तो परमात्मा भी प्रकाश है, यदि ज्ञान या विचार है, तो परमात्मा भी ज्ञान या विचार है। यह सारी विशेषताएँ वस्तुतः एक ही हैं, कहने भर का अंतर जान पड़ता है।

डॉ० ब्राडले भगवान को जानने के लिए अनुभवों का रूप समझने की प्रेरणा देते हैं। उनका कहना है, हमारे अंदर जो अनुभूति कोष है, वह पदार्थ ही नहीं प्रकाश, ताप, चुंबक, विद्युत् कणों से भी भिन्न है, इसलिये उन्होंने भगवान को परम-अनुभव (एब्सोल्यूट परसेप्शन) कहा है। यह सारी बातें मिलकर एक अध्यात्मवादी सृष्टि का निर्माण करती हैं, इसलिये यूकन ने उसे आध्यात्मिक जीवन का आधार कहा। जगद्गुरु शंकराचार्य और उपनिषद दर्शन उसे ही 'अहं ब्रह्मास्मि', 'तत्त्वमसि', 'अयमात्मा ब्रह्म', 'मैं ही ब्रह्म हूँ', 'परमात्मा तत्त्व रूप है;' 'यह मेरी आत्मा ही ब्रह्म है', आदि सूक्तों से संबोधित करते हैं। यह सारी विशेषताएँ परमात्मा के स्वरूप के भिन्न-भिन्न विशेषण हैं, तत्त्वतः वह एक ही है।

उनकी स्पष्ट अनुभूति का द्वार खोला आइन्स्टीन ने। सापेक्षवाद का सिद्धांत (थ्योरी ऑफ रिलेटिविटी) में आइन्स्टीन ने जिस परम-अवस्था (एब्सोल्यूट स्टेज) का वर्णन किया है, वह परमात्मा ही है। हम जब तक समय, स्थान, गति और कारण (टाइम, स्पेस, मोशन एंड काजेशन) से बँधे रहते हैं, तब तक ज्ञान, मस्तिष्क, विचार की दिशायें इधर-उधर दौड़ती रहती हैं, कभी भूत की बात सोचते हैं, कभी भविष्य की, कभी अपने घर की बात सोचते हैं, कभी अमेरिका, रूस या चंद्रमा पर मानव के पदार्पण की। मस्तिष्क गतिविहीन नहीं होता, कभी हो सकता नहीं। कारण के कारण की खोज में लगा रहता है, पर यदि इन सब बातों को भूलकर केवल मस्तिष्क में ही स्थिर हो जायें, तो हमारे लिए समय, स्थान, गति और कारण का कोई स्थान ही न रहेगा, हम एक परम स्थिति (एब्सोल्यूट स्टेज) में उठे हुए होंगे। वह ज्ञान, वह अनुभूति, वह अध्यात्म ही ईश्वर है और ईश्वर कोई हाथ-पाँव वाला मनुष्य नहीं है।

फिर भी कई लोग हैं, जो वैज्ञानिक कारणों से न सही दार्शनिक प्रतिपादकों से ईश्वर का अस्तित्व संदिग्ध सिद्ध करते रहते हैं। विज्ञान ने ईश्वर के संबंध में केवल इतना ही कहा है कि

भौतिकी नियमों और प्रयोगशाला के उपकरणों द्वारा ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध नहीं होता, इसलिये विज्ञान उसके बारे में कुछ भी कहने में असमर्थ है। नास्तिकवादी दर्शन ने वैज्ञानिकों के इन्हीं विचारों को अपने प्रतिपादनों का आधार बनाया।

इस संबंध में आस्तिक-दर्शन की मान्यता है कि भौतिक नियमों के आधार पर चेतना की व्याख्या कर पाना न तो सहज संभव है और न ही हमें इसके लिए आतुर और आग्रही होना चाहिए, विज्ञान भी इस सीमा तक उदार दृष्टिकोण अपनाता है, यह उचित भी है।

● प्रत्यक्षवाद कितना अधूरा

पदार्थ विज्ञान का जन्म और अभिवर्धन कुछ शताब्दियों का है, जबकि सृष्टि का जीवन अरबों, खरबों वर्षों का। हर्मनवेल के अनुसार—"हम प्रकृति के रहस्यों का परिचय प्राप्त करने की दिशा में क्रमशः बढ़ रहे हैं। इसमें अधीर नहीं हो रहे हैं, फिर चेतना के रहस्यों को जानने के लिए विज्ञान की वर्तमान अपरिपक्व स्थिति को ही क्यों प्रमाणभूत आधार मानें ? हमें धैर्य रखना होगा और वैज्ञानिक प्रगति की उस स्थिति के लिए प्रतीक्षा करनी होगी, जहाँ पहुँचकर वह चेतना विज्ञान को भी अपने साथ सम्मिलित कर सके और अपने विकसित ज्ञान के आधार पर जीवन तत्त्व की व्याख्या कर सके।"

शरीरशास्त्री सर चार्ल्स शैरिंगटन ने अपनी पुस्तक 'मैन ऑन हिज नेचर' में लिखा है—चेतना के स्तर की परीक्षा, हम ऊर्जा नापने के उपकरणों से नहीं कर सकते। भावनाएँ और विचारधारायें किस स्तर की हैं और व्यक्ति के आदर्श एवं आचरण किस श्रेणी के हैं, यह जानने के लिए किसी शरीर का रासायनिक विश्लेषण करने से क्या काम चलेगा ? व्यक्तित्व अपने आप में एक रहस्य है, उसकी गहराई में उतरने के लिए वे परीक्षण पद्धतियाँ असफल ही रहेंगी, जो कोशिकाओं एवं ऊतकों की संरचना तक ही साथ

लेकर समाप्त हो जाती हैं। मनुष्य का कलेवर ही पदार्थों से बना है, इसीलिए इसी के विश्लेषण, वर्गीकरण, तत्त्व परीक्षा द्वारा संभव हो सकता है। चेतना एवं उसके स्तर जिस संरचना से बने हैं, उनका निरूपण एवं सुधार परिवर्तन करने के लिए भौतिकी के नियम, परीक्षण एवं उपकरण निरर्थक सिद्ध होंगे।

भौतिकी में नोबेल पुरस्कार विजेता प्रो० ई० पी० विगनर ने कहा है—"आधुनिक भौतिकी के सिद्धांतों से चेतना की संरचना—स्थिति एवं उतार-चढ़ावों की व्याख्या नहीं हो सकती। जिन कारणों से चेतना में उभार, उतार-चढ़ाव, परिवर्तन आते हैं और उत्थान-पतन के आधार पर खड़े होते हैं, वे तत्त्व कुछ और ही हैं। वस्तुओं को जिस आधार पर प्रभावित, परिवर्तित किया जाता है, वे सिद्धांत चेतना को परखने और सुधारने के लिए किसी प्रकार काम नहीं आ सकते। मस्तिष्क-विद्या शरीर के एक अवयव की हलचलों का विश्लेषण तो कर सकती है; पर उस आधार पर किसी के विचार बदलने या संवेदनाओं को प्रभावित करने जैसे प्रयोजन बहुत ही स्वल्प मात्रा में हो सकते हैं। भौतिकी के आधार पर चेतना की व्याख्या करने के लिए, जो प्रयत्न किये जाते हैं, उनमें विसंगतियाँ ही भरी रह जाती हैं।"

पदार्थ विज्ञान प्रकृति के विवरण प्रस्तुत कर सकता है, पर उसकी संरचना एवं हलचलों के पीछे सन्निहित उद्देश्यों पर प्रकाश नहीं डाल सकता। परमाणु, उप-परमाणु, जीन, जीवाणु, कंपन, ऊर्जा, प्रकाश, विकिरण का स्वरूप ही भौतिकी हमें बता सकती है, पर यह नहीं बता सकती कि ब्रह्मांड में भरा हुआ पदार्थ किसलिए इतनी द्रुतगति से कहाँ दौड़ता चला जा रहा है ? आकाश-गंगाओं की विशालता और ग्रह-नक्षत्रों की मध्यवर्ती दूरी को नापने से हमारा क्या प्रयोजन सिद्ध होगा ? जब तक यह पता न चले कि उनका अस्तित्व किस उद्देश्य की पूर्ति में संलग्न है। भौतिकी ही यदि सब कुछ है, तो उसकी व्याख्या में इतना और जोड़ना चाहिए कि यहाँ सब कुछ निरुद्देश्य है। यदि पदार्थों और हलचलों का कोई उद्देश्य

नहीं, तो फिर मनुष्य की सत्ता का, उसकी जीवन-संपदा का ही कुछ प्रयोजन क्यों होगा ? उद्देश्यरहित अस्तित्व के लिए न कुछ कर्त्तव्य है और न अकर्त्तव्य। फिर नीति, नियम, अनुशासन और आदर्श की बात करना भी व्यर्थ है, भौतिकी ही यदि सब कुछ है और तत्त्वदर्शन निरर्थक है, तो समझना चाहिए कि हम निरर्थक हैं और हम निरर्थक दुनिया में, निरर्थक जीवन यापन कर रहे हैं और अपनी उच्छृंखलता पर निरर्थक ही अंकुश लगाने की बात सोच रहे हैं। यदि भौतिकी उन्हीं निष्कर्षों तक हमें पहुँचाती है, तो उस उपलब्धि की तुलना में आदिमकाल का पिछड़ापन किसी प्रकार भी बुरा नहीं ठहराया जा सकता।

दार्शनिक कोयरे के अनुसार, "विज्ञान ने अविज्ञात पर से बहुत से पर्दे उठाये हैं और अनजान स्थिति को हटाकर जानकारी की संपन्नता प्रदान की है। उस पर भी एक बड़ी हानि यह हुई कि प्रत्यक्ष मनुष्य, अप्रत्यक्ष होता चला गया है और क्रमशः लुप्त होने के निकट जा पहुँचा है।"

विज्ञान के अनुसार परमाणु और जीवाणु का तो अस्तित्व है, पर चेतना का नहीं। कुछ समय पहले वेदांती इस संसार को माया, मिथ्या, स्वप्न और भ्रम बताया करते थे। अब विज्ञान ने उलटकर हमला किया है और यह कहना आरंभ कर दिया है कि मनुष्य की सत्ता माया, मिथ्या और भ्रम है। मनुष्य का न कोई अस्तित्व है और न उद्देश्य। जो कुछ है केवल पदार्थ ही है। पदार्थ ही सोचता है, चाहता है, यह कहते भी नहीं बनता, फिर जो मनुष्य सामने खड़ा है और विज्ञान को उपार्जित करता है वह स्वयं क्या है ? क्या वह विज्ञान की उपज है अथवा विज्ञान में ही विलीन होने जा रहा है ?

भौतिकी के स्वरूप का निर्धारण और इतिहास को क्रमबद्ध बनाने वाले इर्विन श्रेंडिगर ने अपनी प्रतिपादित 'सीक फार दि रोड' में लिखा है कि पदार्थ का मूल स्वरूप कण है या तरंग, यह विवाद महत्त्वपूर्ण नहीं, जितना कि जड़ और चेतन के पारस्परिक संबंधों

की गुत्थी सुलझाना। क्या जड़ ही एक स्थिति में चेतन बन जाती है ? अथवा क्या चेतना स्वयं ही जड़ है ? क्या मात्र इस संसार में पदार्थ ही पदार्थ है ? चेतना का कोई स्थायित्व या अस्तित्व भी है या नहीं ? यह असमंजस भौतिकी ने उत्पन्न किया है। या तो उसे अपनी बात प्रमाणित करके यह घोषणा करनी चाहिए कि भौतिकी ही सब कुछ है, चेतना की पृथकता या प्रमुखता की बात व्यर्थ है; अथवा दर्शन को इस स्तर के प्रमाण संचय करने चाहिए कि छाया हुआ असमंजस दूर हो सके और चिंतन को अस्ति और नास्ति के बीच कोई स्वरूप दिशाधारा मिल सके।

कोयरे ने झल्ला कर कहा है—"यह कितनी विचित्र बात है कि विज्ञान ने हर पदार्थ को मान्यता दी है, किंतु मनुष्य का अस्तित्व ही मानने से इनकार कर दिया है। कभी धर्मगुरु कहते थे, जो हमारे साथ नहीं चलेगा, वह जहन्नुम में जायेगा और अब वैज्ञानिकों ने लगभग वैसी ही पहेली प्रस्तुत की है और कहना आरंभ किया है, जो विज्ञान को स्वीकार न करेगा, वह अपनी हस्ती ही गँवा बैठेगा।"

चेतना के अस्तित्व को अमान्य ठहराना और उसकी अवमानना करना मात्र वैज्ञानिक एवं दार्शनिक विवाद ही नहीं है। उसके निर्णय का प्रभाव मनुष्य की नैतिक, संस्कृति, समाज व्यवस्था पर भी पड़ता है। उतावली में 'अस्वीकृति' के प्रति आग्रह जमा लिया जाय, तो उसका तात्कालिक प्रभाव यह होगा कि मानवी गरिमा का मूल्यांकन स्वतः मनुष्य की अपनी ही आँखों में हो जायेगा। जब 'चेतना' कुछ है ही नहीं, रासायनिक पदार्थों से बना ढकोसला ही जब उछल-कूद कर रहा है और उसका अस्तित्व क्षण भर का है, तो फिर नीति और धर्म का अनुशासन मानकर कष्टसाध्य जीवन जीना निरर्थक है। तब फिर बुद्धिमत्ता इसी में है कि इन क्षणों में जितना अधिक मौज मजा लूटा जाय, उससे वंचित न रहा जाय, भले ही इससे प्रचलित नीति-मर्यादाओं का अतिक्रमण ही क्यों न करना पड़े ?

आत्म-गौरव का तब कोई महत्त्व नहीं रह जाता, जब अपना अस्तित्व ही संदिग्ध है। ऐसी दशा में समाज-व्यवस्था के प्रति अपना योगदान करने की प्रवृत्ति ही क्यों उठेगी ? तब देशभक्ति, समाजसेवा, लोकहित, परमार्थ जैसे उन आदर्शों का कोई मूल्य नहीं रह जाता, जिनके ऊपर व्यक्ति की श्रेष्ठता का स्वरूप बताने और उसे अपनाने वाले को श्रेय-सम्मान देने की परंपरा चलती रही है। नास्तिकता की प्रतिक्रिया चरित्र-निष्ठा और समाज-निष्ठा पर सीधा कुठाराघात करती है। उनका आस्थापरक मूल्य समाप्त करती है, फिर समाज व्यवस्था के नाम पर, जो अनुशासन लादा जाता है, वह कोई दर्शन नहीं रह जाता। मात्र व्यवहार रह जाता है। ऐसे व्यवहार को, स्वार्थ साधन के लिए तोड़ फेंकने में किसी को कोई संकोच नहीं हो सकता।

आज धर्म और अध्यात्म की सूत्र संचालक आस्था—आस्तिकता—के प्रति लोकश्रद्धा व्यक्तिवाद और विलासी दृष्टिकोण के कारण स्वतः ही गिरती चली जा रही है, फिर यदि नास्तिकता को दार्शनिक और वैज्ञानिक मान्यता भी मिल गयी, तो उसे शोध की प्रगति या अन्य जो भी नाम दिया जाय, माना और गर्व किया जा सकता है, किंतु उसका दुष्परिणाम उस संचित पूँजी को गँवाने के रूप में ही सामने आयेगा, जिसे मानवी प्रयासों की लंबी शृंखला के उपरांत बड़ी कठिनाई से गढ़ा गया है। उच्चस्तरीय् आस्थाओं का बाँध तोड़ देने के उपरांत तो रही बची आशा भी समाप्त हो जायेगी। तब चरित्र संकट की अराजकता की प्रतिक्रिया मनुष्य को मनुष्य द्वारा फाड़-चीरकर सही निचोड़ने, चूसने और दबाने के रूप में तो प्रस्तुत होगी ही। तब नीति और न्याय का समर्थन उथले और उपहासास्पद तर्कों के सहारे ही किया जा सकेगा और उसके किसी के गले उतरने की आशा नहीं ही की जायेगी।

भारतीय नास्तिकवाद में चार्वाक दर्शन प्रसिद्ध है। उनके मत का संक्षिप्त विवेचन इन दो श्लोकों में हुआ है।

देहस्थौल्यादियोगाच्च स एवात्मा न चापरः।
न स्वर्गो नापवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः।।
यावज्जीवं सुखं जीवेद् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः।।

अर्थात्—काया पंच तत्त्वों के सम्मिलन से बनी है। यह सम्मिलन ही आत्मा है। इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। स्वर्ग, अपवर्ग, आत्मा, परलोक आदि कहीं कुछ नहीं है।

इस मान्यता का फलितार्थ क्या होता है ? इसका स्पष्टीकरण दूसरे श्लोक में देखा जा सकता है। जब आत्मा, कर्मफल, परलोक, पुनर्जन्म आदि कुछ है ही नहीं, तो फिर जिस तरह भी हो, उसी प्रकार स्वार्थ सिद्ध करने और मौज-मजा लूटने के लिए प्रयत्न करना ही अक्लमंदी है। फिर नीति, धर्म, समाज, सदाचार आदि पर ध्यान क्यों दिया जाय ? और उनके बंधनों में बँधकर अपनी सुविधाओं में कमी क्यों की जाय ? दूसरे श्लोक में यही निष्कर्ष है। चार्वाक कहते हैं—

"जब तक जीना सुख से जीना—कर्ज लेकर भी घी पीना। देह तो भस्मी-भूत है। फिर आने का तो सवाल ही नहीं।" इसी दिशा में तो मौज-मजा संभव हो, इसी समय कर लेने की बात ही सही जँचती है। पुण्य, परमार्थ, संयम, सदाचार, सेवा आदि के लिए ऐसी मनःस्थिति में कोई स्थान नहीं रह जाता।

चार्वाक की तरह ईसा से ३०० वर्ष पूर्व यूनान का दार्शनिक एपीक्यूरस भी इसी मत का प्रतिपादन करता था। इसने भी प्राणी को पदार्थ कहा है और चेतना को काया का उत्पादन कहा है। इतने पर भी वह इस शंका समाधान करने में असमर्थ रहा कि यदि चेतना काया का धर्म है, तो मरने के बाद वह काया से अलग क्यों हो जाती है ? जबकि प्रत्येक पदार्थ का गुण उसके साथ अविच्छिन्न रूप से बना ही रहता है।

इससे अधिक स्पष्ट निष्कर्ष जर्मन वैज्ञानिक हेकल ने निकाला है। उन्होंने अपने ग्रंथ 'दि रिडल ऑफ दि युनिवर्स' में यह सिद्ध किया है कि परमाणु में मात्र हलचल ही नहीं, चेतना भी मौजूद है और वह अपने ढंग से उसी प्रकार आगा-पीछा सोचती है, जैसा कि प्राणियों की सत्ता।

मानवी सत्ता की व्याख्या प्रयोगशाला के निष्कर्षों के आधार पर ही की जाय, यह आवश्यक नहीं। प्रत्यक्ष ही सब कुछ नहीं है। उन भाव-संवेदनाओं का महत्त्व तो दूर, उनके अस्तित्व का कोई कारण तक सिद्ध नहीं किया जा सका, जिनके ऊपर भावनाओं का आधार खड़ा हुआ है। स्पष्ट है कि यदि भाव तत्त्व हटा दिया जाय, तो फिर मनुष्य सचमुच ही एक चलता-फिरता पौधा अथवा सोचने, हँसने वाला यंत्र भर बनकर रह जायेगा।

अधूरा प्रत्यक्षवाद यदि चेतना की व्याख्या करने में अतिशय उतावली करेगा—अपने साधन की अपूर्णता का ध्यान न रखेगा, तो यह अत्युत्साह उस मानवी प्रगति की जड़ पर कुठाराघात ही करेगा, जिसका एक अंग स्वतः भौतिक विज्ञान है।



सब कुछ व्यवस्थित और नियमबद्ध है

चेतना का मुख्य गुण है—विकास। जहाँ भी चेतना या जीवन का अस्तित्व विद्यमान दिखाई देता है, वहाँ अनिवार्य रूप से विकास की, वर्तमान स्थिति से आगे बढ़ने की हलचल दिखाई देती है। इस दृष्टि से मनुष्यों, जीव-जंतु और पेड़-पौधों को ही जीवित माना जाता है, परंतु भारतीय अध्यात्म की मान्यता है कि जड़ कुछ है ही नहीं, सब कुछ चैतन्य ही है। सुविधा के लिए स्थिर, निष्क्रिय और यथास्थिति में बने रहने वाली वस्तुओं को जड़ कहा जाता है, परंतु वस्तुतः वे प्रचलित अर्थों में जड़ हैं नहीं।

चेतना और उसके परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाली गति विकास की प्रक्रिया को पृथ्वी, सूर्य, चंद्रमा से लेकर अखिल ब्रह्मांड में देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए पिछले दिनों वैज्ञानिकों ने अपने अंतरिक्षीय उपकरणों और खगोलीय-शोधों के आधार पर कहा कि सारा ब्रह्मांड निरंतर फैलता जा रहा है।

कोई ५० वर्ष पूर्व की बात है—विश्वविख्यात नक्षत्रविद् डॉ० हवल अपने दूरदर्शी स्पेक्ट्रोमीटर पर सुदूर नक्षत्रों से आने वाले प्रकाश के वर्णक्रम का अध्ययन करते थे। सूर्य का श्वेत प्रकाश सात रंगों के मेल से बना है। स्पेक्ट्रोमीटर एक ऐसा यंत्र है, जिसमें एक त्रिपार्श्व काँच लगा रहता है। जब प्रकाश की एक किरण को उसमें कुदाया जाता है, तो इस काँच के गुण के अनुसार वह अपने सात रंगों में फूट पड़ता है। इन रंगों के वर्णक्रम से प्रकाश की स्थिति अंतरंग खनिज स्रोतों की जानकारी भी की जाती है। पर यहाँ जो प्रयोग चल रहा था, उसका प्रयोजन एक आकाशगंगा की दूरी की जाँच करना था, जो उस समय ब्रह्मांड की सीमा पर प्रतीत हो रही थी।

• जाँच के समय एक बिल्कुल ही नया तथ्य प्रकाश में आया। वर्णक्रम का लाल रंग निरंतर सरकता और क्षीण होता प्रतीत हो

रहा था, जिसका अर्थ था कि आकाशगंगा परे हट रही है। उससे आने वाला नाद भी क्रमशः मंद पड़ता जा रहा था, उससे भी उपरोक्त तथ्य की ही पुष्टि हो रही थी। इस परिवर्तन को 'डाप्लर प्रभाव' की संज्ञा दी गयी और एक नये दर्शन ने जन्म लिया कि ब्रह्मांड निरंतर बढ़ रहा है, यह चौंका देने वाली जानकारी थी, जिसने वैज्ञानिकों के सामने विचार के लिए सैकड़ों प्रश्न छोड़े हैं।

अभी कुछ दिन पूर्व एक अन्य वैज्ञानिक डा० फ्रेड हायल भारतवर्ष आये थे, विज्ञान भवन में उपरोक्त प्रश्न का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा था—अंतरिक्ष की गहराइयाँ जितना अनंत की ओर बढ़ेंगी, उसमें झाँककर देखने से मानवीय अस्तित्व का अर्थ और प्रयोजन उतना ही स्पष्ट होता चला जायेगा। शर्त यह रहेगी कि हमारा अपना भी विकास और विस्तार हो। यदि हमारी बुद्धि, विचार और ज्ञान मात्र पेट, प्रजनन, तृष्णा, अहंता तक ही सीमित रहता है तब तो हम पड़ौस भी नहीं जान सकेंगे, पर यदि इन सबसे पूर्वाग्रह मुक्त हों तो ब्रह्मांड इतनी खुली और अच्छे अक्षरों में लिखी चमकदार पुस्तक है कि उससे हर शब्द का अर्थ, प्रत्येक अस्तित्व का अभिप्राय समझा जाता और अनुभव किया जा सकता है।

ब्रह्मांड के निरंतर विकास का अर्थ यह हुआ कि सृष्टि में जो कुछ भी है, चाहे वह पदार्थ हो, ऊर्जा हो, चुंबकत्व हो, प्रकाश हो अथवा विचार सत्ता, जो भी स्थूल या सूक्ष्म अस्तित्व में हैं, वह सब एक ही केंद्र बिंदु पर समाहित था। इस संदर्भ में भारतीय दर्शन और वैज्ञानिक दोनों की धारणायें एक जैसी हैं। प्रारंभ में एक महापिंड था, यह विज्ञान की मान्यता है कि उस महापिंड में किसी समय एकाएक विस्फोट हुआ। विस्फोट से समस्त दिशाओं में आकाशगंगाओं के रूप में पदार्थ बह निकला। अब तक की शोधों के अनुसार ब्रह्मांड में १६ अरब आकाशगंगाएँ हैं और हर आकाश-गंगा में १० अरब तारे हैं। एक आकाशगंगा की परिधि या व्यास लगभग एक लाख प्रकाश वर्ष अर्थात् ३००००० × ६० × ६० × २४

× ३६५ $\frac{१}{४}$ प्रकाश की गति का जो गुणनफल आता है, वह दूरी एक प्रकाश वर्ष कहलाती है। ६४६७२८००००००० किलोमीटर दूरी एक प्रकाश वर्ष की हुई, इससे १ लाख गुना बड़ा व्यास अपनी आकाशगंगा का है, जबकि उनके परिवार के दूर-दूर तक छिटके तारों की दूरी भी अरबों प्रकाश वर्ष में है, अतएव इस भयंकरतम विस्तार का तो कुछ पता ही नहीं चलता।

सूर्य और पृथ्वी के बीच की दूरी सवा नौ करोड़ मील है। वहाँ से यहाँ तक प्रकाश आने में सवा ८$\frac{१}{२}$ मिनट लगते हैं। यदि किसी तारे का प्रकाश पृथ्वी तक ८ हजार वर्षों में आता है, तो उसका अर्थ यह हुआ कि वह पृथ्वी से ४७ पदम मील दूर है। उनका प्रकाश पृथ्वी तक आने में ही अरबों वर्ष लग जायेंगे, अर्थात् उस दूरी का तो अनुमान ही असंभव है। इस तरह सृष्टि की अनंत गहराई में अनंत प्रकृति अनंत रूपों में विद्यमान है।

भारतीय दर्शन की मान्यता चेतन को मूल मानकर ज्यों की त्यों है। प्रारंभ में एक ही तत्त्व परमात्मा पिंड रूप में था, उसके नाभि देश से 'एकोऽहं बहुस्याम्'—मैं एक हूँ, बहुत हो जाऊँ, इस तरह की स्फुरणा, भावना या विचार उठा, इससे वह फट पड़ा और महाप्रकृति की रचना हुई, उसमें सत, रज, तम तीन गुणों का सम्मिलन था, इन्हीं से सृष्टि में जीवन का निर्माण हुआ और सृष्टि के विस्तार की तरह ही ८४ लाख जीव योनियों का विस्तार होता चला गया जिस तरह ब्रह्मांड विकसित हो रहा है, नाना प्रकार के जीवन सृष्टि का भी विकास होता जा रहा है। यह सब अत्यधिक करुणा मूलक, स्नेह-जनक मातृसंज्ञक रूप से चल रहा है। भौतिक या आध्यात्मिक दोनों ही दृष्टियों से आकाशगंगाएँ माता का हृदय कही जा सकती हैं। इनसे एक ओर भौतिक जगत् को आवश्यक जीवन और प्रकाश मिलता है, तो दूसरी ओर जीवन सत्ता उसी से प्राण और पोषण पाती है।

चेतन कहीं भी प्रकृति से भिन्न नहीं है, किसी-न-किसी अवस्था में दोनों अन्योन्याश्रित हैं, "गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत-भिन्न न भिन्न" वाली स्थिति है। यदि दोनों में से कोई इस संतुलन को बिगाड़ने का प्रयास करते हैं, वहीं संकट पैदा हो जाता है। महापिंड या परमात्मा ने अपनी शक्तिस्वरूपा सहचरी आकाशगंगाओं को विपुल शक्ति देकर व्यवस्था के लिए भेज दिया। मंदाकिनियाँ उस अनुदान को हर मंडप के एक-एक मुखिया सूर्य को आवश्यक संपदाएँ सौंपती चली जाती हैं। यह सूर्य आद्य शक्ति अपनी माँ से पोषण और बल लेकर अपने समस्त सौरमंडल को जीवित और जागृत रखते हैं। सब को शक्ति, प्राण, गर्मी, वायु, जल, वर्षा, प्रकृति, अन्न आदि देते हैं, इन सबका प्रयोजन चेतना को—इच्छा शक्ति को जीवित रखना ही तो हो सकता है। यदि मनुष्य समाज की परिवार संस्थाएँ प्रेम, सद्भावना और सहकारिता के इस चुंबकत्व को स्वयं भी धारण कर लें, तो विशाल सौर परिवार की तरह करोड़ों जीवों का समुदाय एकत्र हो जाने पर भी सभी आनंद और उल्लास का जीवन जीते रह सकते हैं।

अनेक ग्रह, नक्षत्रों का परिवार, जिन्हें अनुशासित, मर्यादित पोषित और संरक्षित रखने का काम निरंतर तप कर सूर्य भगवान करते हैं, सौर परिवार या सौरमंडल कहलाता है। इन सब सौर परिवारों का मुखिया उनका सूर्य है। देखने में वह आग का गोला लगते हैं, पर उनमें सोडियम, लोहा, मैगनीशियम, कैल्शियम आदि सब कुछ है, १८५६ में डॉ० मेघनाद साहा ने अपनी खोजों से यह सिद्ध किया था कि सूर्य के प्लाज्मा में दृश्य जगत् का हर तत्त्व विद्यमान है। लोगों को सूक्ष्म अस्तित्व में भी आत्मिक आनंद की सभी सामग्री बताई जाती है, तो लोग विश्वास नहीं करते। उनकी स्थूल दृष्टि में दृश्य, जगत् और स्थूल पदार्थ ही प्रसन्नता के मूल हैं, पर हमारी अनुभूतियाँ जितनी सूक्ष्म और विशाल होती जाती हैं, रस और आनंद के तत्त्व भी उसी अनुपात में असीम तृप्ति वाले बनते चले जाते हैं।

सूर्य ने भी शक्तियों पर एकाधिकार, परिग्रह नहीं किया, वह अपनी शक्तियाँ निरंतर बाँटते रहते हैं, इससे वे रिक्त नहीं हुए, वरन् परमात्मा का मातृहृदय उन्हें यथावत् बनाये रखे हैं, जबकि मनुष्य समाज ने संग्रह का भार लादकर कितनी अव्यवस्थायें बढ़ा दी हैं, यह हर कोई भली प्रकार अनुभव करता है।

सूर्य की तरह हर तारे का अपना ही एक परिवार होता है, उसके अपने चंद्रमा होते हैं, उसका अपना वातावरण होता है, उसी के अनुरूप वह शक्ति का आवश्यक अंश ग्रहण करता रहता है।

परम ब्रह्मांड से लेकर मंदाकिनी परिवारों के विराट् जगत्, सौरमंडल तारामंडल से लेकर प्रकृति के सूक्ष्म परमाणु तक में सर्वत्र नियम, क्रम, व्यवस्था और अनुशासन है। यह तत्त्व शांति और प्रगति के मूल आधार हैं, उनकी उपेक्षा कहीं भी उचित और सह्य नहीं, ब्रह्मांड का यह विधान समान रूप से मनुष्य जीवन पर भी लागू है।

तारों को एक प्रकार से ताप-नाभिकीय भट्ठियों की संज्ञा दी जा सकती है, इस उच्च ताप में ही तत्त्वों का निर्माण होता रहता है; किंतु कहीं भी विखंडन की स्थिति नहीं आती अन्यथा महाविस्फोट हो जाये और किसी भी एक तारे की मर्यादा भंग होने से सारी सृष्टि का सर्वनाश हो सकता है। सामाजिक व्यवस्था की दृष्टि से, जिन्हें बड़े उत्तरदायित्व—जिम्मेदारियाँ दी जाती हैं, उन्हें असीमित अधिकार देने की परंपरा प्रकृति में भी है। मनुष्य समाज में भी प्रकृति अपना संतुलन निरंतर बनाये हुए है, इसी से संसार में सुव्यवस्था कायम है, जबकि मनुष्य इन अधिकारों का हनन करके अपने लिए, देश, समाज, संस्कृति सभी के लिए संकट पैदा करता रहता है। शेक्सपियर ने संभवतः इसी तथ्य की ओर संकेत करते हुए जूलियस सीजर में लिखा है—"दोष अपने तारों में नहीं, स्वयं मनुष्य में है।"

ब्रह्मांड की गति और विस्तार का क्रम सर्वत्र एक सा है, हर ग्रह नक्षत्र अपनी धुरी पर घूमता है। पृथ्वी २४ घंटे में अपनी एक परिक्रमा पूरी करती है, जबकि चंद्रमा ३३६ घंटे में अर्थात् वहाँ के दिन और रात हमारी पृथ्वी के दिन व रात से १४ गुने बड़े दिन और १४ गुनी बड़ी रात। बुध की परिस्थितियाँ भिन्न हैं अर्थात् उसका एक भाग निरंतर सूर्य की ही ओर बना रहता है, दूसरा अंधकार में। पर अपने आप में गतिशील वह भी है। हम समझते हैं सूर्य स्थिर है, पर ऐसा नहीं, वह भी १ सेकंड में १३ मील की गति से घूमता है, मंदाकिनियाँ भी अपने सौर परिवारों को लेकर किसी विराट परिक्रमा में संलग्न हैं, अपनी "स्पाइरल" आकाशगंगा की स्वयं की गति २०० मील प्रति सेकंड है। इसी तरह ब्रह्मांड १५० मील प्रति सेकंड की गति से विकसित हो रहा है। यह गति हर जगह है। इसी तरह प्रत्येक व्यक्ति को अपनी एक आचार-संहिता ऐसी निर्धारित करनी चाहिए, जिससे समाज में गतिशीलता तो रहे पर किसी की सीमा, किसी के अधिकारों का अतिक्रमण न हो। हर ग्रह अपने मुखिया की परिक्रमा में लगा है। हर चंद्रमा अपने ग्रह की, ग्रह सौर परिवार की, सौर मंडल मंदाकिनियों की परिक्रमा करते और मनुष्य को अपने देश, जाति, समाज के प्रति कर्त्तव्यनिष्ठ बने रहने की प्रेरणा देते रहते हैं।

● क्षुद्रता का दंड दुष्परिणाम

खगोल विद्या के अनुसार यह ब्रह्मांड निरंतर बढ़ और फैल रहा है। विराट् की पोल में प्रत्यक्ष ग्रह नक्षत्र किसी असीम, अनंत की दिशा में द्रुतगति से भागते चले जा रहे हैं। यों यह पिंड अपनी धुरी और कक्षा में भी घूमते हैं, पर हो यह रहा है कि वह कक्षा, धुरी और मंडली तीनों ही असीम की ओर दौड़ रहे हैं। सौर मंडल एक-दूसरे से दूर होते जा रहे हैं। यह दौड़ प्रकाश की गति से भी कहीं अधिक है। जो तारे कुछ समय पूर्व दीखते थे, वे अब अधिक दूरी पर चले जाने के कारण अदृश्य हो गये।

इसे विस्तार भी कह सकते हैं—विघटन भी, और यह भी कह सकते हैं कि इसका अंत एकता में होगा। गोलाई का सिद्धांत अकाट्य है। प्रत्येक गतिशील वस्तु गोल हो जाती है। स्वयं ग्रह-नक्षत्र इसी सिद्धांत के अनुसार चौकोर, तिकोने, आयताकार न होकर गोल हुए हैं। यह ब्रह्मांड भी गोल है। नक्षत्रों की कक्षाएँ भी गोल हैं। इस गोल वृत्त की लपेट में आगे यह दौड़ अंत में किसी-न-किसी बिंदु पर पहुँचकर मिल ही जायेगी और इस वियोग प्रक्रिया को संयोग में परिणत होना पड़ेगा।

सौरमंडल इसलिये व्यवस्थित, जीवित और गतिशील हैं कि वहाँ प्रत्येक ग्रह अपनी मर्यादाओं में चल रहा है और एक-दूसरे के साथ अदृश्य बँधनों में बँधा हुआ है। यदि यह प्रकृति इन ग्रहों की न होती, तो वह न जाने कब का बिखर गया होता और टूट-फूटकर नष्ट हो गया होता।

सौर परिवार अति विशाल है। सूर्य की गरिमा अद्भुत है। उसका वजन सौर परिवार के समस्त ग्रह, उपग्रहों के सम्मिलित वजन से लगभग ७५० गुना अधिक है। सौर मंडल केवल विशाल ग्रह और उपग्रहों का ही सुसंपन्न परिवार नहीं है, उसमें छोटे और नगण्य समझे जाने वाले क्षुद्र ग्रहों का अस्तित्व भी अक्षुण्ण है और उन्हें भी समान सम्मान एवं सुविधाएँ उपलब्ध हैं। यह क्षुद्र ग्रह किस प्रकार बने ? इस संबंध में वैज्ञानिकों का मत है कि दो समर्थ ग्रह परस्पर टकरा गये। टकराहट किसी को लाभान्वित नहीं होने देती। उसमें दोनों का ही विनाश होता है, विजेता का भी और उपविजेता का भी। यह विश्व सहयोग पर टिका हुआ है, संघर्ष पर नहीं, संघर्ष की उद्धत-नीति अपनाकर बड़े समझे जाने वाले की क्षुद्रता से पतित होते हैं। यह क्षुद्र ग्रह यह बताते रहते हैं कि हम कभी महान थे, पर संघर्ष के उद्धत आचरण ने हमें इस दुर्गति के गर्त में पटक दिया।

मंगल और बृहस्पति के बीच करोड़ों मील खाली जगह में क्षुद्र ग्रहों की एक बहुत बड़ी सेना घूमती रहती है। सीरिस, पैलास,

हाइडाल्गो, हर्मेस, वेस्ट, ईरास आदि बड़े हैं। छोटों को मिलाकर इनकी संख्या ४४ हजार आँकी गयी है। इनमें कुछ ४२७ मील व्यास तक के बड़े हैं और कुछ पचास मील से भी कम।

कहा जाता है कि कभी मंगल और बृहस्पति के बीच कोई ग्रह आपस में टकरा गये हैं और उनका चूरा इन क्षुद्र ग्रहों के रूप में घूम रहा है। पर यह बात भी कुछ कम समझ में आती है, क्योंकि इन सारे क्षुद्र ग्रहों को इकट्ठा कर लिया जाये तो भी वह मसाला चंद्रमा से छोटा बैठेगा। दो ग्रहों के टूटने का इतना कम मलवा कैसे ? एक कल्पना यह है कि सौरमंडल बनते समय का बचा-खुचा फालतू मसाला इस तरह बिखरा पड़ा है और घूम रहा है।

वैज्ञानिकों के इन क्षुद्र ग्रहों पर बड़े दाँव लगे हुए हैं। एक योजना यह है कि इनमें से जो कीमती हैं, उनको पकड़कर धरती पर लाया जाए और उनमें से धातुएँ निकाली जाएँ। एक योजना यह है कि इनमें से कइयों को पकड़कर एक साथ बाँध दिया जाय, ताकि अंतर्ग्रह यात्रा के लिए जाने वाले यानों के लिए उस पर विश्राम स्थल बनाया जा सके।

विशाल ग्रह उपग्रहों से धातुएँ निकालने, उनको पुल के पत्थरों की तरह पकड़कर घसीट लाने की कोई वैज्ञानिक योजना नहीं है। किसी ने ऐसा सोचा भी नहीं कि शनि या बृहस्पति को पकड़कर धरती के किसी अजायबघर में रखा जाना चाहिए; पर बेचारे क्षुद्र ग्रहों के लिए कितने ही तरह के जाल बुने जा रहे हैं। क्षुद्रता एक प्रकार की विपत्ति ही है, हमें आत्म-विस्तार की बात सोचनी चाहिए। व्यक्तिवाद की, निजी लाभ की, स्वार्थ भरी संकीर्णता की परिधि छोड़कर आत्म विस्तार की दिशा में आगे बढ़ना चाहिए। निखिल विश्व में यही क्रम चल रहा है। ग्रह-नक्षत्र इसी रीति-नीति का अनुसरण कर रहे हैं। क्यों न हम भी इसी श्रेय पथ पर चलने के लिए कदम बढ़ायें ?

● सब कुछ विकासमान है

हम क्रमशः विकसित हो रहे हैं—आगे बढ़ रहे हैं, यह एक तथ्य है। आदिम काल के वनवासी मनुष्य ने सभ्यता के वर्तमान चरण तक पहुँचने की लंबी यात्रा में अपनी अग्रगामी चेष्टा को प्रखर रखा है। चेतना की अदम्य इच्छा आगे बढ़ने की—प्रगति करने की है, यह उचित भी है और आवश्यक भी। अपूर्णता से पूर्णता की ओर बढ़ रही जीव-आकांक्षा अपने लक्ष्य की ओर चलते हुए विकास-क्रम और अग्रगमन के उत्साह का ही अवलंबन ग्रहण करेगी। यह विकास-प्रक्रिया न केवल मानवी-चेतना में काम करती है, वरन् ब्रह्मांड-विस्तार के रूप में भी वह क्रम चल रहा है।

ज्योति-भौतिकी की महत्त्वपूर्ण खोजों से यह स्पष्ट हो चला है कि ब्रह्मांड का निरंतर विस्तार हो रहा है। समस्त आकाशगंगायें, समस्त सौरमंडल और ग्रह-नक्षत्र क्रमशः अपना आकाशीय-क्षेत्र आगे बढ़ाते चले जा रहे हैं। कहा जाता है कि अरबों वर्ष पूर्व सृष्टि के अंतराल में 'घनीभूत' पदार्थ के मध्य एक भयंकर विस्फोट हुआ था। उसी के छिटककर ग्रह-नक्षत्र बने और वह छिटकना तब से लेकर अब तक क्रमशः आगे ही बढ़ता चला जा रहा है। सभी आकाशगंगायें एक-दूसरे से दूर हटती चली जा रही हैं और यही हाल सौरमंडलों का है। शून्य आकाश के उन्मुक्त क्षेत्र की विशालता इतनी बड़ी है कि अभी करोड़ों-अरबों वर्षों तक यह दौड़ ऐसे ही चलती रह सकती है, पर कभी-न-कभी इसका भी अंत होगा और गोलाई की गति के अनुसार यह धावमान पदार्थ अंततः अपने मूल उद्‌गम पर जाकर इकट्‌ठा हो जायेगा। उसी स्थिति को महाप्रलय कहा जा सकेगा।

ब्रह्मांड-व्यापी आकाश को समझने-समझाने की दृष्टि से चार क्षेत्रों में बाँटा जा सकता है—

प्रथम क्षेत्र में तो हमारी धरती, उसका वायुमंडल, चुंबकीय क्षेत्र है। ऊपरी वायुमंडल का अधिक भाग आवेशित परमाणुओं,

अणुओं और इलेक्ट्रॉनों से बना हुआ है। आकाश के इस क्षेत्र में पदार्थ के अस्तित्व का पता आसानी से चल जाता है।

दूसरा क्षेत्र है—सौरमंडल के ग्रहों के बीच में फैला हुआ भाग। यह क्षेत्र सूर्य के बाहरी परिमंडल (कोरोना) से निरंतर निकलने वाली पतली और फैलने वाली गैस से भरा हुआ है। इसे 'प्लाज्मा' या सौर वायु कहते हैं। इसी हवा के कारण पुच्छल-तारों की पूँछें सदा सूर्य से विपरीत दिशा में रहती हैं। यही हवा पृथ्वी के चुंबकीय क्षेत्र को भी पूँछ की शक्ल का पुच्छल-तारा बना देती है।

तीसरा क्षेत्र है—पृथ्वी और सूर्य के बीच की दूरी से प्रायः ५० गुना—सौरमंडल से आगे हमारी आकाशगंगा में जुड़े तारों के बीच का आकाश भाग। यहाँ भी तारों के बीच के भाग में पदार्थ के उदासीन और आवेशित कणों से बनी हुई पतली गैस है।

चौथा क्षेत्र वह आकाश है—जिसमें हमारी आकाशगंगा जैसी अन्य अगणित आकाशगंगाएँ और उनसे संबद्ध असंख्य चित्र-विचित्र ग्रह-नक्षत्र भरे पड़े हैं।

इस विशाल महा-आकाश के संबंध में जितनी कुछ जानकारी अब तक मिली है, उसका परिचय विशालकाय दुरबीनों, रेडियो, टेलिस्कोपों, किरणों में उपलब्ध आवेशित कणों, ध्रुवीय-प्रकाश आदि के साधनों का बड़ा योगदान है। उड़न राकेटों और अंतरिक्ष-यानों ने भी इस आकाश-ज्ञान में अभिवृद्धि की है।

इस समस्त जानकारी के आधार पर यह तथ्य स्पष्ट है कि जन्म से लेकर प्रौढ़ता पर्यंत हर पदार्थ में विकास-क्रम जारी रहता है। अभी अपना ब्रह्मांड किशोरावस्था पार करके प्रौढ़ता की आयु में प्रवेश कर रहा है। इसलिये अधिकांश ग्रह-नक्षत्र अपना आयतन फुला रहे हैं, अपनी कक्षायें चौड़ी कर रहे हैं और एक-दूसरे से छिटककर अनंत आकाश में अविज्ञात की ओर द्रुतगति से दौड़े जा रहे हैं, इसे हम सृष्टि का विकास-विस्तार या प्रगति कह सकते हैं।

एक से अनेक बनने की ब्रह्म-इच्छा ने हिरण्यगर्भ का विस्फोट किया और उससे अगणित आकाशगंगाओं, महातारकों, सौरमंडलों, ग्रह-उपग्रहों, उल्का और धूमकेतुओं का विशालकाय परिवार अस्तित्व में आया। जन्म के बाद विकास ही दूसरा चरण है, सो हम देखते हैं कि ब्रह्मांड में विकास के चरण द्रुतगति से आगे बढ़ रहे हैं। अधिकांश ग्रह-नक्षत्रों की गतिविधियाँ इन दिनों इसी स्तर की हैं। हमें अपनी गतिविधियों को विकासोन्मुख-प्रगतिशील रखते हुए प्रकृति की प्रेरणा का अनुगमन करना चाहिए।

ग्रहों की स्थिति का बारीकी से अध्ययन करने पर अनेकों सृष्टि-नियम ऐसे दृष्टिगोचर होते हैं, जो क्या जड़, क्या चेतन सभी पर समान रूप से लागू होते हैं। अपनी पृथ्वी की अगणित विशेषताओं से एक यह है कि उनकी ऊपरी परत में शीतलता और हल्कापन पर्याप्त मात्रा में है, इसी कारण उस पर जीवों की उत्पत्ति से लेकर शोभा-सुषमा तक का सौंदर्य विकसित हुआ है। जीवन पर भी यह नियम लागू होता है। यदि हल्के-फुल्के दृष्टिकोण को लेकर जिया जायेगा, संग्रहशीलता और अनियंत्रित-महत्त्वाकांक्षाओं के भार से बचा जायेगा, तो मनुष्य न केवल सुखी रहेगा, वरन् प्रगति भी करेगा। पर जिन्होंने अपने को भारी बोझों से लाद—जकड़ लिया है, उन्हें पग-पग पर जिंदगी दूभर लगेगी और निरंतर रोष, असंतोष की स्थिति से अपने को घिरा पायेंगे। पृथ्वी की भीतरी परतों में गर्मी भी अधिक है और भारीपन का दबाव भी बढ़ा-चढ़ा है। अतएव वहाँ किसी सुंदर और सुव्यवस्थित वस्तु का अस्तित्व नहीं बन पाता। सब कुछ आग्नेय द्रव के रूप में है। भूकंपों द्वारा समय-समय पर पृथ्वी की इस आंतरिक स्थिति का परिचय भी मिलता रहता है।

अब तक पृथ्वी को अधिक से अधिक ५ मील तक ही खोदा जा सका है, जबकि पृथ्वी के मध्य केंद्र की गहराई लगभग ४ हजार मील है। अधिक गहराई में क्या है ? इसकी यत्किंचित् जानकारी भूकंपों के समय निकलने वाली भूगर्भीय तरंगों से ही प्रतीत होती है।

पृथ्वी की संरचना में ऑक्सीजन, सिलिकन, एल्युनियम, लोहा आदि भारी तत्त्वों का बाहुल्य है। ब्रह्मांड में प्रायः हाइड्रोजन, हीलियम जैसे हल्के पदार्थ ही अधिक भरे पड़े हैं, उसमें उनकी मात्रा ८० से ९९ प्रतिशत तक है, पर अपनी पृथ्वी में उनकी मात्रा १/१० प्रतिशत से भी कम है।

पृथ्वी के भीतरी भाग में दबाव बहुत अधिक है। जहाँ धरती का तरल भाग समाप्त होकर कड़ा आवरण शुरू होता है, वहाँ का दबाव प्रायः प्रति वर्ग इंच पर लगभग १० हजार टन है।

यों अहंकारी स्थूल दृष्टि भारी-भरकम और उष्णता-उग्रता को ही महत्त्व देगी, पर पृथ्वी की स्थिति ने स्पष्ट कर दिया है कि उसके भीतरी अंतराल में जहाँ गर्मी और दबाव का बाहुल्य है, वहाँ केवल दाह की भट्टी ही जल रही है और उस विक्षोभ की उसासें भूकंपों और ज्वालामुखियों के रूप में फूटकर शांत वातावरण को विषाक्त और विकृत ही करती रहती हैं। इसके विपरीत धरती के ऊपरी वायुमंडल में जहाँ हल्कापन और शीतलता का संतुलन है, वहीं जीवन, सौंदर्य और सुविधा-साधनों के पनपने का अवसर मिला है। यह तथ्य यदि हम समझ सकें तो अपनी गतिविधियों में उपयोगी परिवर्तन करके सुख-संतोष भरी प्रगतिशीलता का रसास्वादन कर सकते हैं।

यों हर किसी को स्वावलंबी बनने का प्रयत्न करना चाहिए, पर यह भी ध्यान रखना चाहिए कि अपने में जो बीज रूप से विद्यमान क्षमताएँ हैं, उन्हें विकसित करने के लिए बाहर से भी बहुत कुछ सहयोग लेना पड़ता है। यह सारा समाज सहकारिता के सिद्धांतों से जकड़ा हुआ है। हमारा विकास ही नहीं, जीवन भी पारस्परिक सहयोग के आधार पर ही गतिशील हो रहा है।

ग्रह-नक्षत्रों का अस्तित्व और क्रियाकलाप भी पारस्परिक सहयोग और आदान-प्रदान पर ही चल रहा है। अपनी पृथ्वी को ही लें, वह सूर्य से बहुत कुछ ग्रहण करती, उसके अनुदान से अपना

काम चलाती है। इसका अर्थ यह नहीं, कि वह दूसरे ग्रहों को अपना अनुदान नहीं देती। निश्चित रूप से लेने के साथ, देने का भी अविच्छिन्न तथ्य जुड़ा हुआ है। जो लेता भर रहेगा और देने का नाम न लेगा, वह बेमौत मरेगा। पृथ्वी दूसरे ग्रहों को पर्याप्त अनुदान देती है, पर साथ ही अपनी विशेषताओं को अक्षुण्ण रखने के लिए सूर्य पर निर्भर भी रहती है।

ब्रिटिश खगोलज्ञ और सुप्रसिद्ध दुरबीन विशेषज्ञ—सर विलियम हर्शेल ने सूर्य की स्थिति का धरती पर होने वाले प्रभावों का गहरा अध्ययन किया है और यह निष्कर्ष निकाला है कि वनस्पतियों के विकसित और फलित होने से लेकर प्राणियों के शरीर और मनुष्यों के मनःस्तर पर सूर्य परिवर्तन का असाधारण प्रभाव पड़ता है। इसे देखते हुए यह प्रतीत होता है कि सूर्य से पृथ्वी के न केवल ऋतु-परिवर्तन प्रभावित होते हैं, वरन् प्राणियों का शारीरिक और मानसिक स्तर भी उठता-गिरता है। उज़्बेक (रूस) के विज्ञानी—'एन० केनोसरिन' ने सूर्य के धब्बों के साथ पृथ्वी पर दल-दल घटने-बढ़ने की संगति बिठाई है। मास्को के 'प्रो० शिझेब्स्की' ने पता लगाया है कि धरती के इतिहास में जब-जब सूर्य में तीव्र प्रतिक्रियाएँ हुई हैं, तब-तब हैजा, प्लेग, टाइफाइड आदि बीमारियों का संसार में भारी प्रकोप हुआ है। उसका कारण वे बैक्टीरिया-जीवाणुओं पर होने वाली सौर प्रतिक्रिया को मानते हैं। वे सूर्य के प्रभाव में घट-बढ़ होने के कारण मनुष्यों के स्वभाव में हेर-फेर होने की बात भी कहते हैं।

ग्रहों के बीच परस्पर क्या संबंध है ? इसका निरूपण करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचना होता है कि सभी एक-दूसरे के सहयोगी हैं। कौन किसका पिता, पुत्र, भाई, भतीजा आदि हैं ? इसका विश्लेषण करने में कुछ काम नहीं चलता। कौन पुराना, कौन नया, कौन दानी और ऋणी, कौन बड़ा, कौन छोटा ? इस झंझट में पड़कर न अहंकार को बढ़ाया जाना चाहिए और न किसी को हीनता का अनुभव करना चाहिए। अच्छा यही है कि हम पारस्परिक

सहकारिता और सहयोग भावना का महत्त्व समझें और यह मानें कि कोई किसी को एक तरह का सहयोग दे रहा है, तो दूसरा उसकी अन्य प्रकार से सहायता कर रहा है।

ग्रह-नक्षत्रों के बीच भी अब इसी मान्यता को प्रधानता दी जा रही है। चंद्रमा और पृथ्वी के बीच क्या रिश्तेदारी है ? इसका विश्लेषण बहुत समय तक किया जाता रहा, पर अब अंत में इसी निष्कर्ष पर पहुँचा गया है कि कोई किसी का आश्रित नहीं, सभी का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है और इस ब्रह्मांड-परिवार में सभी ग्रह-नक्षत्र सहयोगी सदस्य बनकर रह रहे हैं।

चाँद पृथ्वी का भाई है ? बेटा है ? या दोस्त, मेहमान है ? पता लगाया जाना शेष है।

'सर जार्ज डार्विन' ने कहा है कि प्रशांत महासागर की जमीन किसी खंडप्रलय के कारण उखड़ पड़ी और उड़कर चाँद बन गयी। जहाँ से वह मिट्टी उखड़ी, वहाँ का गड्ढा समुद्र बन गया। यह उखड़ी हुई जमीन आकाश में मँड़राने लगी और धरती का चक्कर काटती हुई चंद्रमा बन गयी। इस प्रकार वह पृथ्वी का बेटा हुआ। इसी संदर्भ में यह भी कहा गया है कि जिन दिनों पृथ्वी की सतह लाल अंगारे की तरह तप रही थी, उन दिनों वह घूमती भी तेजी से थी—अपनी धुरी पर, तब वह एक चक्कर तीन घंटे में ही लगा लेती थी और आये दिन गरम लावे के ज्वार-भाटे जैसे भूकंप आते थे। उन्हीं दिनों कई विशालकाय उल्काएँ धरती से टकराईं और कई समुद्र तथा झील-सरोवर बन गये।

फ्रेंच वैज्ञानिक बुफो ने चंद्रमा को धरती का भाई माना है। वे कहते हैं—सारे ग्रह-उपग्रह एक ही समय, एक ही साथ बने हैं, आरंभ में अकेला सूर्य था। कहीं से एक और विशालकाय सूर्य आया और हमारे सूर्य से टकरा गया। टकराव से दोनों का बहुत बड़ा हिस्सा धूल बनकर अंतरिक्ष में उड़ने लगा और जब वह सघन हुआ तो उसी से सौरमंडल के ग्रह और उपग्रह बन गये।

खगोलज्ञ लाटलास वाईज स्रैकर, जेरार्डकुइपर, फ्रंडहाइल आदि विद्वानों का कथन है कि समस्त आकाशगंगायें, तारक, सौरमंडल और उपग्रह, स्रष्टि के आदि से प्रथम विस्फोट के छितराव से फैली हुई धूलि से बने हैं। वे आकर्षण-विकर्षण की धाराओं से परस्पर बँधे जरूर हैं और अपनी धुरी और कक्षा की भ्रमणशीलता भी परस्पर संबंधों के आधार पर स्थिर किये हुए हैं—फिर भी कोई किसी से उत्पन्न नहीं हुआ। सभी ग्रह-उपग्रहों का जन्म स्वतंत्र रूप से हुआ है और उनका मूल कारण आदि पदार्थ 'हिरण्यगर्भ' का विस्फोट ही था। इस प्रकार सभी ग्रह एक-दूसरे के मित्र, पड़ौसी मात्र हैं। यही बात पृथ्वी और चंद्रमा के संबंध में भी लागू होती है।

ब्रह्मांड-परिवार के सदस्य—ग्रह-नक्षत्र जहाँ विकास की दिशा में बढ़ रहे हैं, वहीं उनमें वृद्धता, मरण और पतन का क्रम भी अपने ढंग से चल रहा है। उसे देखते हुए यह संभावना स्पष्ट है कि इस विशाल ब्रह्मांड को भी एक दिन मरण के मुख में जाना पड़ेगा। तारक और आकाशगंगायें स्वाभाविक वृद्धता के शिकार होकर मृत्यु के ग्रास होते रहे हैं और आगे होते रहेंगे। जब समस्त ब्रह्मांड बूढ़ा हो जायेगा, तो महाकाल उसे भी अपनी कराल डाढ़ों से चबाकर रख देगा। जन्म के बाद विकास, विकास के बाद मरण का सिद्धांत तो ब्रह्मांड को भी लपेट में लिये बिना छोड़ने वाला नहीं है।

अपनी आकाशगंगा की शक्ति जिस तेजी से क्षीण हो रही है, उसे देखते हुए वैज्ञानिक, उससे संबद्ध सौरमंडलों के अवसान की आशंका करने लगे हैं। मेरीलेंड विश्वविद्यालय की खगोल शाखा ने बताया है कि वह दिन निकट आता चला आ रहा है, जब अपनी आकाशगंगा के साथ जुड़े हुए ग्रह उससे छिटककर दूर चले जायेंगे और अनंत अंतरिक्ष में स्वतंत्र रूप से विचरण करने लगेंगे। इसका प्रभाव सौर-परिवार पर ही नहीं, ग्रहों के साथ भ्रमण करने वाले उपग्रहों पर भी पड़ेगा और एक विश्रृंखल अराजकता की ऐसी बाढ़ आवेगी कि सर्वत्र एकाकीपन दृष्टिगोचर होने लगेगा। पर

अंतर्ग्रहीय आदान की शृंखला टूट जाने से ऐसी स्थिति उत्पन्न होगी कि हर नक्षत्र विविधताओं के कारण बनी हुई विशेषताओं और सुंदरताओं को खोकर अपने स्वरूप की तुच्छताओं से सीमाबद्ध, अपंग और कुरूप स्तर को ही प्राप्त होगा।

यहाँ सब कुछ जन्मता, बढ़ता और मरता है। ब्रह्मांड भी—यह तथ्य मनुष्य को समझना चाहिए, साथ ही यह भी समझना चाहिए कि जन्म-मरण के साथ-साथ सब कुछ एक नियम व्यवस्था के अंतर्गत चल रहा है। इस नियम व्यवस्था को समझने, परमात्मा की न्याय व्यवस्था को स्वीकार करने के अतिरिक्त मनुष्य को अपने जीवन का सीमित विस्तार मानते हुए, चिरकाल तक उपभोग के लिए नीति-अनीतिपूर्वक सब कुछ संचित करते जाने की गलती नहीं करनी चाहिए।



जन्म-मरण से कोई मुक्त नहीं

जन्म और मरण के बीच की यात्रावधि को जीवनकाल कहा जाता है। यह यात्रा मनुष्य, जीव-जंतु और पेड़-पौधों को ही संपन्न करनी पड़ती हो, ऐसा नहीं है। अपितु इस विशाल चक्र में ब्रह्मांड के कितने ही ग्रह-नक्षत्र आये दिन उत्पन्न होते और मृत्यु के मुख में चले जाते हैं। उनका विस्तार अपनी पृथ्वी के लाखों करोड़ों गुना बड़ा है, तो भी जन्म मरण के बंधनों में वे भी बँधे हुए हैं। क्या छोटे, क्या बड़े सभी काल के ग्रास बने हुए हैं। प्राणी ही नहीं, ग्रह-नक्षत्र भी इसी नियति-क्रम के आधार पर उदय और अस्त होते रहते हैं।

ग्रह-नक्षत्रों की दूरी तथा विस्तार परिधि को हम खुली आँखों से नहीं देख सकते। उनकी जानकारी प्राप्त करने को उन सूक्ष्मग्राही यंत्रों का सहारा लेना पड़ता है, जो दूरवर्ती तारकों से निःसृत होने वाली प्रकाश किरणों को पकड़ने और परखने में समर्थ होते हैं।

यह ग्रह-नक्षत्र न केवल प्रकाश तरंगें फेंकते हैं, वरन् उनका शक्ति-प्रेषण जो सैकड़ों प्रकार का है, उनमें एक प्रेषण रेडियो शक्ति तरंगों का भी है। हमें उनकी जानकारियाँ इन रेडियो-तरंगों के आधार पर ही होती हैं। पिछले दशक में डेनिश खगोलवेत्ता मार्टेन रियाडट ने प्रचंड शक्तिशाली क्वासर किरणों के पृथ्वी पर आगमन का पता लगाया था। उनका उद्गम आठ अरब प्रकाश वर्ष माना गया है, किंतु इनका प्रवाह भी स्थिर नहीं, वह ज्योति हमसे प्रति सेकंड २४,००० किलोमीटर की चाल से दूर हटती चली जा रही है। इसका कारण वह फुलाव-विस्तार की भगदड़ प्रक्रिया ही है।

अनंत तारक मंडल में हमारा सूर्य भी एक छोटा-सा तारा है, इस ब्रह्मांड में ऐसे भी अनेक तारे विद्यमान हैं, जो सूर्य से भी अनेक गुने बड़े हैं। सूर्य परिवार में ६ मुख्य ग्रह—लगभग एक सहस्त्र

अवांतर ग्रह—अनेक पुच्छल तारे एवं उल्का समूह हैं। सूर्य तारे का यह संपूर्ण परिवार—उसके मध्य का विशाल आकाश तथा अपनी-अपनी कक्षाओं में गमन करने हेतु उन सबके द्वारा घेरा गया आकाश, यह सब मिलकर एक सौरमंडल कहलाता है।

सौरमंडल के ग्रहों का आकार—सूर्य से उनका अंतर एवं उनके सूर्य का परिभ्रमण में लगने वाले समय का विवरण इस प्रकार है—

अपने सूर्य जैसे लगभग ५०० करोड़ तारों, सौरमंडल तथा अकल्पनीय विस्तार वाले धूल तथा गैस-वर्तुलों के मेघ मिलकर एक आकाशगंगा बनती है। ऐसी १० करोड़ से अधिक आकाशगंगाओं तथा उनके मध्य के अकल्पनीय आकाश को एक ब्रह्मांड कहा जाता है। यह ब्रह्मांड कितने हैं ? इस प्रश्न के उत्तर में प्रश्नकर्त्ता से ही उलटा प्रश्न पूछना पड़ेगा—आपके नगर में रेत के कण कितने हैं ? मनुष्य की बुद्धि एवं कल्पना इस स्थान पर थक जाती है। इसलिये विज्ञान ने उसे 'अनंत' कहा है। अध्यात्मवाद ने इस समस्त रचना को ही नहीं उसके स्वामी, नियंता, रक्षक को भी 'अनंत' नाम से ही संबोधित किया है—

अनंत आकाश में स्थित ग्रह तारकों की विशालता और उनकी परिभ्रमण कक्षा के विस्तार की कल्पना करने से पूर्व हमें अपने सौरमंडल में स्थित नव ग्रहों पर दृष्टि डालनी चाहिए और देखना चाहिए कि असंख्य सौरमंडलों में से छोटा-सा तारा अपना सूर्य—आदित्य—कितने बाल परिवार को अपने साथ लिए फिरता है।

(१) बुध, व्यास ३००० मील, सूर्य से दूरी ३ करोड़ ६० लाख मील, सूर्य की परिक्रमा में लगने वाला समय ८२ दिन।

(२) शुक्र, व्यास ७८०० मील, दूरी ६ करोड़ ७० लाख मील, अवधि २२४ $\frac{१}{२}$ दिन।

(३) पृथ्वी—व्यास ७९२० मील, दूरी ६ करोड़ ३० लाख मील, अवधि ३६५ $\frac{१}{४}$ दिन।

(४) मंगल—व्यास ४२०० मील, दूरी १४ करोड़ १० मील, परिभ्रमण ६८७ दिन।

(५) गुरु—व्यास ८७०० मील, दूरी ४७ करोड़ ३० लाख मील, परिभ्रमण समय १२ वर्ष।

(६) शनि—व्यास ७४०० मील, दूरी ८८ करोड़ ६० लाख मील, परिभ्रमण २६ $\frac{१}{२}$ वर्ष।

(७) यूरेनस—व्यास ३१००० मील, दूरी १८० करोड़ मील, परिभ्रमण समय ८४ वर्ष।

(८) नेपच्यून—व्यास ३३००० मील, दूरी २८० करोड़ मील, परिभ्रमण समय १६४ $\frac{१}{२}$ वर्ष।

(९) यम—व्यास ३००० मील, दूरी ३७० करोड़ मील, परिभ्रमण समय २४८ वर्ष।

इस सौरमंडल की एक सदस्या अपनी पृथ्वी भी है। उसकी स्थिति का विहंगावलोकन करते हुए सामान्य बुद्धि हतप्रभ होती है, फिर अन्य विशालकाय ग्रह-नक्षत्रों की विविध विशेषताओं पर ध्यान दिया जाए, तो प्रतीत होगा कि इस संसार में छोटे से लेकर बड़े तक सब कुछ अद्‌भुत और अनुपम ही है। सृष्टिकर्त्ता की कृति प्रतिकृति को समझने के लिए मानवी बुद्धि का प्रयास सराहनीय तो है, पर निश्चित रूप से उसकी समस्त चेष्टाएँ सीमित ही रहेंगी। अपनी पृथ्वी के भीतर तथा बाहर, जो रहस्य छिपे पड़े हैं, अभी उनमें से कण मात्र ही जाना समझा जा सका है, जो शेष है वह इतना अधिक है कि शायद उसे जानने में मानव जाति की जीवन अवधि ही समाप्त हो जाय।

पृथ्वी का मध्य केंद्र बाह्य धरातल से ६४३५ किलोमीटर है, पर उसके भीतर की स्थिति जानने में अभी प्रायः २८०० मीटर तक का ही पता चलाया जा सका है। मध्य केंद्र का तापमान शतांश होना चाहिए। ६२ मील की गहराई पर तापमान ३०००° (अंश) शतांश होगा। इस तापमान पर किसी पदार्थ का ठोस अवस्था में रहना संभव नहीं। अस्तु यह निर्धारित किया गया है कि ६२वें मील से लेकर ३६६० मील पर अवस्थित भूगर्भ केंद्र तक का सारा पदार्थ पिघली हुई स्थिति में होगा। समय-समय पर फूटने वाले ज्वालामुखी और भूकंप इसी तथ्य की पुष्टि करते हैं।

भूगर्भ केंद्र के पदार्थ पिघली हुई—लचीली स्थिति में होने चाहिए, इसका एक कारण यह भी है कि पृथ्वी के धरातल के एक मील नीचे ऊपर की पृथ्वी का दबाव प्रायः ४५० टन प्रतिवर्ग फुट पड़ता है। बढ़ते-बढ़ते यही दबाव पृथ्वी केंद्र पर २० लाख टन प्रति वर्ग फुट हो जायेगा। दबाव का यह गुण होता है कि वह पदार्थ के आयतन (विस्तार) को घटाता है। रुई के ढेर को दबाने से उसका विस्तार छोटा रह जाता है। यों भीतर का ताप आयतन बढ़ाने का प्रयत्न करेगा; पर साथ ही बाहरी दबाव उसे रोकेगा भी। इन परस्पर विरोधी शक्तियों के कारण भीतर एक प्रकार के तनाव की स्थिति बनी रहेगी और उस स्थान पर पदार्थ लचीला ही रहेगा।

पृथ्वी की आयु कितनी है ? इसका निष्कर्ष पाँच आधारों पर निकाला गया है—(१) प्राणियों का विकास परिवर्तन का सिद्धांत (२) परत चट्टानों के निर्माण की गति (३) समुद्र का खारापन (४) पृथ्वी के शीतल होने की गति (५) रेडियो धर्मी तत्त्वों का विघटन के आधार तक पृथ्वी की आयु लगभग २०० करोड़ वर्ष ठहरती है, पर यह अनुमान मात्र ही है। इस संदर्भ में मतभेद बहुत है, उनमें १२ करोड़ वर्ष से लेकर ६०० करोड़ तक की पृथ्वी की आयु होने की बात कही गयी हैं।

पृथ्वी का यह घोर तापयुक्त हृदय केंद्र विशाल है। इसकी त्रिज्या २१०० मील है। इस भाग को 'बेरी स्फियर' कहते हैं।

भूगर्भ विज्ञान के अनुसार पृथ्वी गोल है। केवल ध्रुवीय क्षेत्रों में कुछ चिपकी हुई है। भूमध्य रेखा क्षेत्र में कुछ उभरी हुई है। पृथ्वी का व्यास ७६०० मील है। पर्वतों की सर्वोच्च चोटी प्रायः ५ $\frac{१}{२}$ मील ऊँची और समुद्र की अधिकतम गहराई ७ मील है।

यह तो मात्र पृथ्वी की बनावट संबंधी 'जानकारी हुई। उससे संबंधित समुद्र, पर्वत, वायुमंडल, ऊर्जा, चुंबकत्व आदि की चर्चा इतनी बड़ी है कि अब तक की जानकारियाँ न्यूटन के शब्दों में सिंधु तट पर बालकों द्वारा बीने गये सीप-घोंघों की तरह ही स्वल्प हैं।

सृष्टि के अंतर्गर्भ में छिपे हुए ज्ञात और अविज्ञात रहस्यों की ओर जब दृष्टिपात करते हैं, तो प्रतीत होता है कि उनका रचयिता सचमुच ही 'महतो महीयान' है। उसका महत्त्व इस सृष्टि के रूप में अपनी लीलाविकास से मानवी बुद्धि को चकित चमत्कृत कर रहा है। यदि उस महत्ता के समुद्र में जीव अपनी सत्ता को विसर्जित कर दे , तो अगले ही क्षण आज का अणु विभु बन सकता है और पुरुष से पुरुषोत्तम बन सकता है।

विस्तार, संकुचन, जन्म-मरण, सक्रियता, विश्राम जैसी परस्पर विरोधी लगने वाली; पर वास्तविक पूरक क्रिया-कलाप के आधार पर ही सृष्टि की गतिविधियाँ चल रही हैं, इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए, हमें यह मानकर चलना चाहिए कि अपनी स्थिति भी सदा एक जैसी नहीं रह सकती। आज की समर्थता कल की असमर्थता में परिणत हो सकती है। इसलिये वर्तमान का श्रेष्ठतम सदुपयोग करने की ही बात सोचनी चाहिए। इस पश्चात्ताप का अवसर नहीं आने देना चाहिए, कि अमुक समय हमें ऐसे सत्कर्म करने का अवसर था, पर हम उस समय आलस्य, प्रमाद अथवा लोभ-मोह वश वैसा नहीं कर सके। आज के जीवन को कल मृत्यु

में परिणत होना ही है, जब इतने विशालकाय ग्रह-नक्षत्र एक जैसी स्थिति में नहीं रह सकते, तो हम तुच्छ प्राणी कैसे सदा विकसित एवं समर्थ रह सकते हैं ?

● ब्रह्मांड के भीतर झाँकें तो

ब्रह्मांड को देखने-समझने के लिए मानवी जिज्ञासा अब इस प्रयास में संलग्न है कि सौरमंडल से बाहर निकलकर विशाल ब्रह्मांड की झाँकी की जाय और अनुमान को प्रत्यक्ष में परिणत करके यह देखा जाय कि आखिर यह सारा प्रयास है क्या ? है कैसा ?

सौरमंडल से बाहर निकलने के लिए हमें तीव्रतम गति की आवश्यकता होगी और दीर्घकालीन जीवन अभीष्ट होगा, अनंत्य-अकल्पित दूर तक पहुँचना और लौटना संभव ही कैसे हो सकेगा ? इस संदर्भ में वैज्ञानिकों के जो प्रयास चल रहे हैं, उनमें आशा की एक क्षीण किरण दिखाई पड़ने लगी है।

अब तक प्रकाश की गति को ही सर्वोपरि गति माना जाता रहा है। आइन्स्टीन कहते थे, इससे तीव्रगति नहीं हो सकती। पर अब 'कर्क' नीहारिका की गतिविधियों का विश्लेषण करते हुए इस गतिशीलता का नया कीर्तिमान सामने आया है। आक्सफोर्ड विश्व-विद्यालय के डॉ० एल० एल० और डॉ० ज्याफे एनडीन ने इस नीहारिका के विद्युतीय चुंबकीय क्षेत्र की चल रही गतिशीलता को प्रति सेकंड ५,६५,२०० मील नापा है, जो प्रकाश गति की तुलना में लगभग चार गुना अधिक है। इस नीहारिका के मध्य एक छोटा सूर्य ऐसा पाया गया है, जिसका तापमान अपने सूर्य से १०० गुना अधिक है। वह अपनी धुरी पर प्रति सेकंड ३३ बार परिक्रमा कर लेता है, यह भ्रमण गति भी अब तक की कल्पनाओं से बहुत आगे है।

समस्त ब्रह्मांड के बारे में जानना तो बहुत दूर की बात है, हम अपने सौरमंडल के बारे में ही बहुत कम जानते हैं। पृथ्वी के

बारे में हमारी जानकारी का क्रमिक विकास हुआ है। चंद्रमा को प्राचीन काल में एक स्वतंत्र और पूर्ण ग्रह माना जाता था, अब वह मान्यता बदल दी गयी है और माना गया है कि वह पृथ्वी का उपग्रह मात्र है।

चंद्रमा पृथ्वी से ३,८०,००० किलोमीटर दूर है। प्रकाश की किरणें उस दूरी को सवा सेकंड में पूरी कर लेंगी। सूर्य से पृथ्वी १४,६५,००००० किलोमीटर दूर है। इतनी दूरी पूरी करने में प्रकाश किरणों को साढ़े आठ मिनट लगते हैं। अपने सौरमंडल का अंतिम ग्रह प्लूटो, सूर्य से ५६० करोड़ कि० मी० दूर है। इस दूरी को प्रकाश किरणें साढ़े पाँच घंटे में पूरा करती हैं।

मंगल को भौम—भूमिपुत्र आदि नामों से पुकारा जाता है और कहा जाता है कि वह अति प्राचीन काल में पृथ्वी का ही एक अंग था। प्रकृति के विग्रह से यह टुकड़ा कटकर अलग हो गया और स्वतंत्र रूप से ग्रह बनकर अपनी कक्षा में भ्रमण करने लगा। इतने पर भी उसमें ऐसी अनेकों विशेषताएँ मौजूद हैं, जो पृथ्वी से मिलती-जुलती हैं। उस पर प्राणियों की उपस्थिति पर जो विश्वास किया जाता रहा है; उसमें कमी नहीं आई, वृद्धि एवं पुष्टि ही हुई है।

सोवियत खगोलवेत्ता मिखाइल यारोव ने अभी हाल में रूस तथा अमेरिका द्वारा भेजे गये मंगल खोजयानों की रिपोर्टों का अध्ययन करके यह निष्कर्ष निकाला है, कि वहाँ जीवन होने की बहुत संभावना है। वे कहते हैं कि मंगल मृत ग्रह नहीं है। उसमें पिछले दिनों ऐसी उथल-पुथल होती रही हैं, जिनका प्राणियों की उत्पत्ति में प्रधान हाथ रहता है। अगले दिनों वहाँ के ध्रुवों के पिघलने की पूरी संभावना है, इससे कुछेक केंद्रों में संग्रहीत और ठोस स्थिति में रहने वाला पानी नदी-नालों और बादलों के रूप में जगह-जगह पहुँचने लगेगा। उस स्थिति में स्वभावतः ऐसे प्राणी उत्पन्न होने लगेंगे, जो वहाँ की जलवायु में भली प्रकार जीवनयापन कर सकें।

मंगल में पानी तो है, पर वह वहाँ फटते रहने वाले ज्वालामुखियों द्वारा हवा में भाप बनाकर बुरी तरह उड़ाया जा रहा है। उसके भूतल का प्रायः एक लाख गैलन पानी भाप बनकर आकाश में उड़ जाता है। इसी से सघन बादल जो उसके ऊपर छाये हुए हैं और भी अधिक सघन बनते जाते हैं।

अंतरिक्ष खोजी मैनियर ने जो सूचनाएँ भेजी हैं, उनका विश्लेषण करते हुए डॉ० मासूरस्की ने एक निष्कर्ष यह भी निकाला है कि मंगल जब सूर्य की परिक्रमा करते हुए उसके निकटतम पहुँच जाता है, तो गर्मी की अधिकता से उसके ध्रुव प्रदेशों की बर्फ पिघलकर नई नदियों तथा झीलों का निर्माण करती है। जब वह बहुत दूर निकल जाता है, तो गर्मी की कमी से हिम प्रलय भी होती है। इन हिम युगों के बीच प्रायः २५००० वर्षों का अंतर रहता है।

हम पृथ्वी निवासियों की शरीर रचना डिआक्सीराइवो न्यूक्लीक एसिड (डी० एन० ए०) रसायन से संभव हुई है। यह जलीय स्तर का तत्त्व है। उसका विकास जहाँ जल की उपस्थिति होगी वहाँ संभव हो सकेगा; पर यह अनिवार्य नहीं कि यह एक ही रसायन सभी ग्रह-नक्षत्रों की स्थिति में जीवन उत्पन्न करता हो, उसके और भी बहुत से आधार हैं।

अमेरिका की नेशनल साइंस कांग्रेस के मंगल-ग्रह की नवीनतम स्थिति को ध्यान में रखते हुए भी यह आशा व्यक्त की है कि वहाँ जीवन का अस्तित्व हो सकता है। डी० एन० ए० के अतिरिक्त भी जीवन के अन्य आधार हो सकते हैं। पृथ्वी पर भी ऐसे बैक्टीरिया पाये गये हैं, जो मंगल जैसी परिस्थितियों में रखे जाने पर ही जीवित रह सकते हैं। उन्हें ऑक्सीजन की जरा भी जरूरत नहीं पड़ती, यहाँ तक कि ऑक्सीजन में उल्टे दम तोड़ने लगते हैं।

रूस की साइंस एकेडेमी के अंतर्गत चलने वाले माइक्रो बायोलॉजिकल इंस्टीट्यूट ने एक प्रयोगशाला विनिर्मित की है,

जिसमें मंगल-ग्रह जैसा वातावरण है। इसमें पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाले पिग्मेंटे बैक्टीरिया भली प्रकार विकसित हो रहे हैं। घातक अल्ट्रावायलेट विकिरण भी उन्हें कुछ हानि नहीं पहुँचा सकता। ऐसे ही कुछ पौधे भी हैं, जो उस वातावरण में जीवनयापन कर रहे हैं।

मैनीनर—६ यान द्वारा भेजी गयी सूचनाओं का जेट प्रोपल्शान लेब्रोरेटरी में अध्ययन करके यह निष्कर्ष निकाला गया है कि वहाँ के दक्षिण ध्रुव पर हिमाच्छादित वातावरण है। डॉ० रुडोल्फ हैनेल ने इन्हीं सूचनाओं से यह भी नतीजा निकाला है कि वहाँ की हवा में भाप का भी अच्छा अंश है। ऊपर के वातावरण में तेज गर्मी अवश्य है, पर मंगल के धरातल पर तापमान सह्य है। मंगल के दो चंद्रमा उसकी परिक्रमा करते हैं।

मंगल ग्रह की उपरोक्त विशेषताओं को देखते हुए, अमेरिकी वैज्ञानिकों ने वहाँ पर जीवन की संभावनाओं का पता लगाने के लिए, १ मई, १९८९ को एक यान प्रथम बार भेजा था। पृथ्वी से मंगल ग्रह की दूरी ६२० लाख से ६५० लाख मील है। इस यात्रा पर ७५० खरब डालर खर्च हुआ।

पोलिश खगोल विज्ञानी जान गाडोमिस्की ने ब्रह्मांड में जीवन की संभावनाओं पर प्रकाश डालने वाली एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक लिखी है—'मेनुअल आन स्टेलर एकोस्फियर्स'। उसमें उन्होंने अपने निकटवर्ती तीन ऐसे ग्रहों का उल्लेख किया है, जिनमें जीवन होने की पूरी-पूरी संभावना है। वे हमसे दस-ग्यारह प्रकाश वर्ष की दूरी पर हैं।

सन् १९५० में एक उल्काश्म पृथ्वी पर गिरा था। उसका विश्लेषण करने में अमेरिका के मूर्धन्य विज्ञानवेत्ता जुटे। डॉ० सिसलर की अध्यक्षता में चली उस शोध का निष्कर्ष यह था कि इसमें अमीनो, नाइट्राइड, हाइड्रोकार्बन जैसे जीव रसायन मौजूद हैं और जहाँ से यह आया है, वहाँ जीवन की संभावना है। कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय ने डॉ० काल्विन के नेतृत्व में इसी

उल्काश्म की दूसरे ढंग से खोज कराई। उनने भी सिसलर की जीवन की संभावना वाली बात को पुष्ट कर दिया।

पृथ्वी से पचास मील ऊपर कितनी ही उल्कायें उड़ती रहती हैं। प्रयत्न किया जा रहा है कि इनमें से कुछ को गिरफ्तार करके लाया जाये और उनके मुँह से ब्रह्मांड के छिपे हुए रहस्यों को उगलवाया जाय। यों धरती पर से भी एस्ट्रोरेडियो सिस्टम के सहारे संसार की कितनी ही वेधशालाएँ इस दिशा में खोज-बीन करने में निरत हैं। ओजमा प्रोजक्ट का रेडियो टेलिस्कोप इस दिशा में कितनी ही महत्त्वपूर्ण खोजें प्रस्तुत करने में सफल हो चुका है।

अपने सौरमंडल में नौ ग्रह हैं, जिनका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। इकतीस उपग्रह हैं और जो गिन लिये गये ऐसे बीस हजार क्षुद्र ग्रह हैं। यह सभी अपनी-अपनी कक्षा की मर्यादाओं में निरंतर गतिशील रहने के कारण ही दीर्घ जीवन का आनंद ले रहे हैं। यदि वे व्यतिक्रम पर उतारू हुए होते, तो इनमें से एक भी जीवित न बचता। कब के वे परस्पर टकराकर चूर्ण-विचूर्ण हो गये होते।

इन नौ ग्रहों में से जो ग्रह सूर्य के जितना समीप है, उसकी परिक्रमा गति उतनी ही तीव्र है। बुध सबसे समीप होने के कारण प्रति सेकंड ४८ किलोमीटर की गति से चलता है और एक परिक्रमा ८८ दिन में पूरी कर लेता है। पृथ्वी एक सेकंड में २८.६ किलोमीटर की चाल से चलती हुई ३६५.२५ दिन में परिक्रमा पूरी करती है। प्लूटो सबसे दूर है, वह सिर्फ ४.३ किमी प्रति सेकंड की चाल से चलता है और २४८.४३ वर्ष में एक चक्कर पूरा करता है।

इनमें से बुध और शुक्र में अतिताप है। मंगल मध्यवर्ती है। बृहस्पति, शनि, यूरेनस, नेपचून, प्लेटो बहुत ठंडे हैं। पृथ्वी का तापमान संतुलित है।

सूर्य से पृथ्वी की ओर चलें तो पाँचवां और पृथ्वी से सूर्य की ओर चलें, तो तीसरा ग्रह बृहस्पति है। वह अपने नौ ग्रहों में सबसे

बड़ा है। शेष आठ ग्रहों का सम्मिलित रूप भी बृहस्पति से कम पड़ेगा, उसकी दूरी सूर्य से भी उतनी ही है, जितनी पृथ्वी से, अर्थात् कोई ६० करोड़ मील अधिक से अधिक और ३६ करोड़ कम से कम। उसका मध्य व्यास ८८,७०० मील है। सामान्यतया उसे पृथ्वी से १० गुना बड़ा कहा जा सकता है। गैस के बादलों की १० हजार से लेकर २० हजार मील मोटी परत उस पर छाई हुई है। पानी और हवा का अस्तित्व मौजूद है। बृहस्पति के इर्द-गिर्द १२ चंद्रमा चक्कर काटते हैं। इनमें से चार का तो विस्तृत विवरण भी प्राप्त कर लिया गया है। बृहस्पति का गुरुत्व पृथ्वी से ढाई गुना अधिक है। वहाँ दिन १० घंटे का होता है, किंतु वर्ष लगभग ११ वर्ष में पूरा होता है। उसकी चाल धीमी है, एक सेकंड में ८ मील, जबकि अपनी पृथ्वी एक सेकंड में २८ मील चल लेती है।

विश्व जीवन का कीर्तिमान २१०° फारेनहाइट तक जीवित रह सकने का बन चुका है। उतनी गर्मी सहन करने वाले जीवधारी बृहस्पति जैसे दूसरा सूर्य समझे जाने वाले हाइड्रोजन गैस प्रधान ग्रहों पर आसानी से निर्वाह कर सकते हैं।

वैज्ञानिक यहाँ तक कहते हैं कि सूर्य के विस्फोट से जिस प्रकार सौर-मंडल के अन्य ग्रह बने हैं, उस तरह बृहस्पति नहीं बना। वह अपने बारहों उपग्रहों समेत एक स्वतंत्र नक्षत्र है। किसी प्रकार सूर्य की पकड़ में आकर उसकी—अधीनता स्वीकार करने में विवश हो गया है, तो भी उसमें स्वतंत्र तारक जैसी विशेषताएँ बहुत अंशों में विद्यमान हैं। यदि बृहस्पति स्वतंत्र तारक रहा होता, तो उसके १२ उपग्रहों में ४ को प्रधानता मिलती। इन प्रधान चंद्रमाओं को गैलिलियो ने अपनी दुरबीनों से देख लिया था और उनका नामकरण आई० ओ०, यूरोपा, गैनीमीड, कैलिस्टो कर दिया था। अन्य ८ उपग्रह इसके बाद देखे-पहचाने गये।

सौर परिवार के ग्रह पिंड अपनी पृथ्वी के सहोदर भाई हैं। हम उनके बारे में जो जानते हैं, वह इतना कम है जिसे बालकों जितना स्वल्प ज्ञान ही कह सकते हैं। सौर परिवार जैसे

अरबों-खरबों तारक मंडल जिस ब्रह्मांड में भरे पड़े हैं, उसकी विशालता की कल्पना तक कर सकना अपनी बुद्धि के लिए संभव नहीं है।

हम अपनी ज्ञानपरक उपलब्धियों पर गर्व करें सो ठीक है, पर साथ ही यह भी ध्यान में रखें कि अनंत ज्ञान की तुलना में हमारी जानकारियाँ अत्यंत ही स्वल्प और नगण्य हैं। इतनी तुच्छ जानकारी के आधार पर हमें सर्वज्ञाता बनने का दुस्साहस नहीं करना चाहिए और ईश्वर एवं आत्मा के अस्तित्व तक से इनकार करने की इसलिये ढीठता नहीं बरतनी चाहिए कि हमारी बुद्धि उसे प्रत्यक्षवाद की प्रयोगशाला में प्रकट नहीं कर सकी।

● ब्रह्मांड का विस्तार मापा नहीं जा सकता

ब्रह्मांड का विस्तार इंच, फुट, गज और मीलों में नापा नहीं जा सकता। उसे केवल समय माप सकता है; क्योंकि वह जब एक मूल बिंदु से विकसित होना आरंभ हुआ था, तब से आज तक बढ़ता ही जा रहा है। प्रकाश एक सेकंड में १ लाख ८६ हजार मील चलता है और एक वर्ष में ५८६६ अरब, ७१ करोड़, ३६ लाख मील चलता है। इस हिसाब से जब से पृथ्वी का जन्म हुआ, तब से ही सृष्टि का विस्तार मापें, तो साधारण-सा अनुमान लगाया जा सकता है। वह अनुमान आंशिक रूप से ही सही होगा; क्योंकि पृथ्वी के पूर्व भी कितने ही ग्रह-नक्षत्र जन्म ले चुके होंगे ? फिर भी अनुमान लगाने के लिए पृथ्वी की उत्पत्ति को आधार मानने में कोई हर्ज नहीं है। लेकिन पृथ्वी की उत्पत्ति कब हुई, यह भी अबतक ठीक-ठीक मालूम नहीं किया जा सका है। 'वैदिक संपत्ति' के विद्वान लेखक पं० रघुनंदन शर्मा ने पृथ्वी पर मनुष्य की उत्पत्ति का समय परार्द्ध और मन्वंतरों के हिसाब से १९७२९४०००० वर्ष निकाला है, जबकि पृथ्वी को इससे अधिक ही होना चाहिए। इस हिसाब से अकेले इतने ही समय में ब्रह्मांड का विस्तार ५८६६७१३६००००० × १९७२९४०००० मील

होना चाहिए, पर पृथ्वी तो सौरमंडल का एक अति छोटा-सा ग्रह है, इससे पहले और बाद का विस्तार तो इससे भी अरबों गुना अधिक है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि यह ब्रह्मांड ५० करोड़ प्रकाश वर्ष के घेरे में है। १० करोड़ तो नीहारिकायें मात्र हैं, जो अनेक सौरमंडलों को जन्म दे चुकीं, दे रही हैं।

पीले रंग का हमारा सूर्य एक प्रकाशोत्पादक आकाशीय पिंड 'तारा' माना गया है। इसके मुख्य नौ-ग्रह, लगभग एक हजार अवांतर ग्रह, अनेक पुच्छल तारे एवं उल्का समूह हैं। इन सबके द्वारा सूर्य के चारों ओर घेरा गया आकाश सब मिलाकर सौरमंडल कहलाता है। भारतीय मत के अनुसार, जहाँ तक सूर्य की किरणें गमन कर सकती हैं, वह सब सौरमंडल का विस्तार है। इस विस्तार का अनुमान करना ही कठिन है, जबकि सौरमंडल संपूर्ण ब्रह्मांड में ऐसा है, जैसे १० करोड़ मन गेहूँ के ढेर में पड़ा हुआ गेहूँ का एक छोटा दाना। एटलस में सारी पृथ्वी का नक्शा निकालकर अपने गाँव के अपने घर की जगह ढूँढ़ें तो उसकी माप ही नहीं निकाली जा सकेगी, ऐसी ही नगण्य स्थिति सौरमंडल की इस विराट् ब्रह्मांड में है। यहाँ इस सूर्य जैसे करोड़ों सूर्य, अरबों चंद्रमा दिन-रात प्रकाश करते रहते हैं।

नौ प्रमुख ग्रहों का विस्तार ही इतना विशाल है। अभी तो ५०० करोड़ और भी तारे धूमकेतु और क्षुद्र ग्रह हैं, जिनके व्यास १० मील से लेकर कई-कई हजार मील के हैं। सारा सौरमंडल महादानव की तरह है। यदि कहा जाय तो वह हजार भुजाओं वाले सहस्रबाहु, अनेक मुँह वाले दशानन और अपने पेट में सारी सृष्टि भर लेने वाले लंबोदर की तरह विकराल है और मनुष्य उस तुलना में रेत के एक कण, सुई के अग्रभाग से भी हजारवें अंश जितना छोटा। जैसे मनुष्य जब चलता है, तो चींटी, मच्छरों को नगण्य, पाप-पुण्य से परे मानकर मारता-कुचलता निकल जाता है। उसे कभी ध्यान ही नहीं आता कि इतने भी छोटे कोई जीव हैं। उसी प्रकार सौरमंडल की यह अदृश्य

शक्तियाँ हमें कुचलती और क्षुद्र दृष्टि से देखती निकल जाती होंगी, तो हम उनका क्या बिगाड़ सकते हैं ? लगी तो रहती है आये दिन शनि की दशा, दीन मनुष्य उससे भी तो छुटकारा नहीं ले पाता।

चंद्रमा सबसे पास का उपग्रह है, वहाँ लोग थोड़े समय में हो आये। अभी तो बुध है, वहाँ मनुष्य जाये तो २१० दिन तब लगें, जब वह इतनी ही तीव्र गति से उड़ान करे जैसे चंद्र-यात्रा के लिए की। शुक्र में पहुँचने में २६२, मंगल में ५६८, बृहस्पति में २७२४, शनि में ४४१६ दिवस एवं यूरेनस, नेपच्यून तथा यम तक पहुँचने में क्रमशः ३२ वर्ष, ६१ वर्ष और ६२ वर्ष चाहिए, जबकि मनुष्य की अधिकतम आयु ही सौ वर्ष है, अर्थात् कोई यहाँ से बाल्यावस्था में चले और यम का चक्कर लगाकर आये तो वह बीच में ही मर जायेगा।

इतनी दूर की यात्राओं के लिए यात्री को, और उसके पास अधिक सामान न हो, तो भी ऑक्सीजन, पानी, आर्गनिक पदार्थ, क्षार आदि तो चाहिए ही। यह सामान भी एक बड़ा बोझ होगा। बुध के लिए ०.६१५ टन, शुक्र के लिए ०.६२१ टन, मंगल के लिए १.८२४ टन, बृहस्पति ५.६८१, शनि १२.६३६ टन चाहिए, यदि इतना (१ टन = २७ मन के लगभग) खाद्यान्न ही हो जाये, तो अंतरिक्ष यानों की भीम कायिकता का तो अनुमान लगाना ही कठिन हो जायेगा। चंद्रमा जाने वाले अंतरिक्षयान में ५६ लाख पुर्जे लगे थे, यदि उसमें लगे ६६.६ प्रतिशत काम करें शेष .१ प्रतिशत = ५६ पुर्जे ही खराब हो जायें, तो मनुष्य बीच में ही लटका रह जाये ?

यह यात्रायें तभी संभव हो सकती हैं, जब मनुष्य को कुछ दिन मारकर जीवित रखा जा सके। वैज्ञानिक उसकी शोध में पूरी तरह जुट गये हैं। हर नई उपलब्धि, इस तरह नये प्रश्न और नई समस्या को जन्म देते हुए चले जा रहे हैं। महत्त्वाकांक्षाएँ हनुमान के शरीर की तरह बढ़ीं, तो प्रश्न और समस्याओं ने सुरसा का रूप

धारण कर लिया। आज का विज्ञान मनुष्य को ऐसी ही समस्याओं में ग्रस्त करता हुआ चला जा रहा है।

वैज्ञानिकों ने ऐसे प्रयोग किये हैं, जिनसे मनुष्य को अस्थायी मृत्यु प्रदान करके उन्हें पुनर्जीवित करना संभव हो गया है; पर समस्या केवल आयु संबंधी ही तो नहीं है, अंतरिक्ष की विलक्षण शक्तियों से भी तो भय कम नहीं है। न जाने कितने सूक्ष्म शक्ति प्रवाह आकाश में भरे पड़े हैं, वे मानव-नियंत्रित अंतरिक्ष यानों को १ सेकेंड में कहीं-का-कहीं पहुँचा सकते हैं। अमेरिका को इन शक्ति-प्रवाहों का पता भी है।

इन सीमित भौतिक शक्ति, परिस्थिति और अपनी लघुतम क्षमता लेकर मनुष्य अपने सौर-मंडल के विस्तार को ही नाप सकने में समर्थ नहीं, तो फिर विराट् ब्रह्मांड को जान लेना उसके लिए कहाँ संभव है ?

● अकल्पनीय अद्भुत विराट्

जान लेना तो दूर रहा, समूचे ब्रह्मांड को देख पाना भी संभव नहीं है। बिना किसी यंत्र के सायंकाल आकाश की ओर खड़े होकर देखें, तो हम संसार के संपूर्ण भागों से अधिक से अधिक १० हजार तारे देख सकते हैं। एक स्थान पर खड़े होकर दो हजार तारों से अधिक नहीं देखे जा सकते। यह सभी तारे एक सर्पिल नीहारिका (सरपेंटल नेबुला) के बाह्य प्रदेश में उपस्थित हैं। जो हमारी दृष्टि में आ जाते हैं और जो बहुत प्रयत्न करने पर भी नहीं दिखाई देते। आकाशगंगा में ऐसे तारों की संख्या ९५०० करोड़ है। इनमें से अनेक तारे सूर्य से छोटे और अनेक सूर्य से कई गुना बड़े तक हैं। इनकी परस्पर की दूरी इतनी अधिक है कि उन सब की अलग नाप करना भी कठिन है। पृथ्वी से सूर्य की दूरी १० करोड़ ६० लाख मील है, चंद्रमा हम से २४०००० मील दूर है। प्लूटो ग्रह, जो सूर्य से सबसे अधिक दूर है, उसमें सूर्य का प्रकाश पहुँचने में ५ घंटे ३० मिनट समय लगता है अर्थात् सूर्य और प्लूटो के बीच का

अंतर १८६००० मील × १६८०० सैकिंड = ३६८२८००००० मील है। मनुष्य का आकार-प्रकार इतने विशाल अंतरिक्ष की तुलना में सागर की एक बूँद, मरुस्थल के एक रेणु-कण से भी छोटा होना चाहिए।

यह तो रहा सौर परिवार का विस्तार और उसकी परिवार संख्या का संक्षिप्त-सा विवरण। इनमें होने वाली गति, शक्ति और क्रियाशीलता का क्षेत्र तो और भी व्यापक है। सूर्य स्वयं भी स्थिर नहीं। वह अपनी धुरी पर ४३००० मील प्रति घंटे की भयंकर गति से घूमता रहता है और प्रति सेकंड ४० लाख टन शक्ति आकाश में फेंकता रहता है। पृथ्वी को तो उस शक्ति से कुल चार पौंड शक्ति प्रति सेकंड मिलती है और उतने से ही यहाँ के जलवायु का नियंत्रण, खनिज पदार्थ और मनुष्यों को ताप आदि मिलता रहता है। यह शक्ति देखने में कम जान पड़ती है, किंतु उसे यदि किसी परमाणु केंद्र में पैदा करना पड़े, तो उसके लिए प्रति घंटा १७०० अरब डालर व्यय करने पड़ेंगे। सूर्य की यह शक्ति, जो वह अपने सौर परिवार की रक्षा और व्यवस्था में व्यय करता है, वह उसकी संपूर्ण शक्ति के दस लाखवें भाग का भी दस लाखवाँ हिस्सा होता है। काम में आने वाली शक्ति के अतिरिक्त को वह अपने भीतर न जाने किस प्रयोजन के लिए धारण किये हुए है और थोड़ी-सी शक्ति भी कंजूसी से व्यय करता है। उससे जहाँ सूर्य (आत्मा) की शक्ति का बोध होता है, वहाँ यह भी पता चलता है कि नियामक शक्तियाँ कितनी सामर्थ्यवान् हैं और मनुष्य कितना क्षुद्र है, शारीरिक और मानसिक दृष्टि से तो वह कीड़े-मकोड़ों से भी गया-बीता रह गया। आत्मिक दृष्टि से भले ही उसकी सामर्थ्य बढ़ी-चढ़ी हो, किंतु उसका उद्घाटन और उद्बोधन एकाएक नहीं हो जाता, उसके लिये अपूर्व विश्वास, अविरल साधना और अखंड साहस की आवश्यकता पड़ती है।

अभी तक हम अपनी पृथ्वी को छोड़कर केवल सौरमंडल तक ही पहुँचे हैं। यह सौरमंडल अपने परिवार को लेकर किसी अभिजित नक्षत्र की ओर जा रहा है, ऐसा भारतीय ज्योतिर्विदों का

मत है और ऐसी-ऐसी आकाशगंगायें, हजारों नीहारिकायें और अगणित सूर्य अभी इस अंतरिक्ष में हैं। ऋग्वेद में भी सृष्टि के विस्तार के वर्णन में 'बहवो सूर्या' अनंत सूर्य आकाशगंगा में हैं, ऐसा कहा है। आकाश में कुछ ग्रह-नक्षत्र तो इतनी दूरी पर बसे हुए हैं कि मनुष्य मरे और फिर जीवन धारण करे, फिर मरे और फिर जीवन धारण करे, इस तरह कई जन्मों की आवृत्ति कर ले तो भी उनका प्रकाश पृथ्वी तक न पहुँचे। ज्योतिर्विदों का कहना है कि आकाश में ऐसे कई तारे दिखाई दे रहे हैं, जो वास्तव में हैं ही नहीं किंतु चूँकि उनका प्रकाश वहाँ से चल पड़ा है और वह आकाश को पार करता हुआ आ रहा है, इसलिये उस तारे की उपस्थिति तो मालूम होती है; पर वस्तुतः वह टूटकर या तो नष्ट हो गया है, अथवा किसी समीपवर्ती ग्रह में आकर्षित होकर उसमें जा समाया है।

हमारा सौरमंडल जिस नीहारिका से संबद्ध है, उसे मंदाकिनी आकाशगंगा कहते हैं, यह आकाशगंगा ही इतनी विशाल है कि एक सिरे से दूसरे सिरे तक पहुँचने के लिए प्रकाश को १ लाख वर्ष लगेंगे। कुछ चमकीले तारे जैसे व्याध या लुब्धक पृथ्वी से १० प्रकाश वर्ष दूर हैं, यदि कोई तेज-से-तेज जहाज से चले, तो भी वहाँ तक पहुँचने में तीन लाख वर्ष लग जायेंगे। यह भी इसी नीहारिका से संबंध रखते हैं। इस विस्तार को ही तय करने में मनुष्य को लाखों वर्ष लग सकते हैं, तो शेष विस्तार को तो वह लाखों बार जन्म लेकर भी पूरा नहीं कर सकता। वैज्ञानिकों ने अब तक ऐसी दस करोड़ नीहारिकाओं (नेबुलाज) का अनुमान लगाया है। जबकि यह विस्तार भी ब्रह्मांड के संपूर्ण विस्तार की तुलना में वैसा ही है, जैसे समुद्र तट पर बिखरे हुए रेत के एक कण का करोड़वाँ छोटा अणु।

सूर्य का आर-पार ८६४००० मील है। पृथ्वी की परिधि से १०८ गुना अधिक है। ऐसे-ऐसे अनेक सौरमंडल इस अंतरिक्ष में समाये हुए हैं और उनकी गतिशीलता इतनी तीव्र है कि कई-कई

ग्रह-उपग्रह तो ७२ हजार मील प्रति घंटा की रफ्तार से अपने-अपने केंद्र में भ्रमणशील हैं। कई तारे युगल (डबुल) और कई बहुत (मल्टीपल) होकर ब्रह्मांड (कॉस्मॉस) के आश्चर्य को और भी बढ़ा देते हैं। हमारे सौरमंडल में ही १००० छोटे उपग्रह अनेक पुच्छल तारे और असंख्य उल्कायें विद्यमान हैं। इस प्रकार की बनावटें प्रायः सभी सौरमंडलों में हैं। ऐसे-ऐसे १ करोड़ सूर्यों की खोज की जा चुकी है। खगोलशास्त्री एंड्रोमीडा नामक नीहारिका (नेबुला) में २७०० लाख सूर्यों की उपस्थिति की पुष्टि कर चुके हैं। यह हमारे सौरमंडल की ओर २०० मील प्रति घंटा की गति से बढ़ रहा है।

कुछ ऐसे तारों का पता लगाया गया है, जो पृथ्वी से इतनी दूर बसे हैं, जहाँ हमारी कल्पना भी नहीं पहुँच सकती। उदाहरणार्थ 'सिरस' ८$\frac{१}{२}$ प्रकाश वर्ष, 'प्रोस्योन' ११ प्रकाश वर्ष, 'एलटेयर' १५ प्रकाश वर्ष दूर है। वीदा और ऐरीट्यूरस तारा समूह पृथ्वी से ३० प्रकाश वर्ष, कैपीला ५४ प्रकाश वर्ष, सप्तर्षि मंडल १०० प्रकाश वर्ष, रीगल इन ओरिओन ५०० प्रकाश वर्ष, हाइडेसे १३०, प्लाइडस ३२५ और ओरिओन का नीला तारा ६०० प्रकाश वर्ष की दूरी पर बसा हुआ है। यह सब तारे विभिन्न प्रकार की जलवायु-तापीय और ऊर्जा शक्ति वाले हैं। कई लंबाई-चौड़ाई में बहुत बड़े हैं। अंटलारि नामक तारा पृथ्वी जैसी २१ पृथ्वियाँ अपने भीतर भर ले, तो भी बहुत स्थान खाली पड़ा रहे। ओरियन तारा समूह का तारा बैटिल जीन्स का व्यास २५०० लाख मील है, कुछ तारे तो इतनी दूर हैं कि उनकी प्रथम किरण के दर्शन पृथ्वीवासियों को ३६ हजार वर्ष बाद होंगे, तब तक उनका प्रकाश यात्रा करता हुआ बढ़ता रहेगा।

रेडियो ज्योतिष नाम की विद्या का जन्म अब इन सबसे आश्चर्यजनक माना जाने लगा है अर्थात रेडियो दुरबीनों का निर्माण हुआ है, जिससे रेडियो तारे और रेडियो नीहारिकाओं की खोज की गयी।

● अनंत विस्तार के संकेत

डॉ० विकी नामक प्रसिद्ध खगोलज्ञ से एक बार एक पत्रकार ने प्रश्न किया कि आप बता सकते हैं, अति सूक्ष्म से अति विशाल कितना बड़ा है ? डॉ० विकी ने खड़िया उठाई और एक बोर्ड में लिखा १00000000,00000,00000,00000,00000,00000, 00000,0000 (१० से आगे ४१ शून्य) गुना। जबकि यह मात्र अनुमान है, सत्य में विराट् जगत् कितना विराट् है, उसकी कोई माप-जोख नहीं है।

उसी प्रकार अणु इतना सूक्ष्म है कि उसकी सूक्ष्मता का सही माप कठिन है। परमाणु के नाभिक व्यास .0000000000000१ मिलीमीटर होता है। इस नगण्य जैसी स्थिति को आँखें तो इलेक्ट्रॉनिक सूक्ष्मदर्शी से भी कठिनाई से ही देख पाती हैं। दोनों परिस्थितियाँ देखते ही ऋषियों का "अणोरणीयान महतोमहीयान" अर्थात्—"वह अणु से अणु और विराट् से विराट् है" वाला पद याद आता है।

"मनुष्य इन दोनों के मध्य का एक अन्य विलक्षण आश्चर्य है ?" यह कहने पर डॉ० विकी से प्रश्नकर्त्ता ने पूछा—सो क्यों ? इसका उत्तर देते हुए उन्होंने बताया—मनुष्य जिन छोटे-छोटे कोशों (सेल्स-शरीर की सूक्ष्मतम इकाई का नाम सेल है, यह जीवित पदार्थ का परमाणु होता है) से बना है, उनकी संख्या भी ऐसी ही कल्पनातीत है, अर्थात् ७0000000000000000000000। इसमें आश्चर्य यह है कि इन सभी अणुओं में प्रकाशमान नाभिक की संगति आकाश के एक-एक तारे से जोड़ें, तो यह देखकर आश्चर्य होगा कि समस्त ब्रह्मांड इस शरीर में ही बसा हुआ है। डॉ० विकी के इस कथन और ऋषियों के "यथा ब्रह्मांडे तथा पिंडे' जो कुछ ब्रह्मांड में है, वह सब मनुष्य देह में है। ऐसी विलक्षण और विराट् देह प्राप्त करके भी मनुष्य जब क्षुद्र जीव-जंतुओं का सा जीवन जीता है, तो ऐसा लगता है कि मनुष्य को इस शरीर की देन देकर

भगवान् ने ही भूल की अथवा मनुष्य ने स्वयं ही उस सौभाग्य को अपने अज्ञान द्वारा आप नष्ट कर लिया।

मनुष्य का सूर्य-मंडल जीवन-चक्र है। सूर्य से १० करोड़ ६० लाख मील दूर रहने वाली हमारी पृथ्वी को ग्रह कहते हैं। ग्रह इसलिये कहते हैं; क्योंकि इसका अपना प्रकाश नहीं है, यह सूर्य की द्युति से चमकती है। शुक्र, मंगल, बृहस्पति, शनि, यूरेनस, प्लूटो सभी सूर्य से उधार प्रकाश पाकर चमकते हैं। इसलिये इन्हें ग्रह-उपग्रह कहते हैं। जो अपनी चमक से चमकते हैं, उन्हें तारा कहते हैं। सूर्य इस परिभाषा के अंतर्गत एक तारा ही है। इसके आठ ग्रह हैं। इन आठों ग्रहों के अपने-अपने चंद्रमा हैं। कम से कम १५०० छोटे उपग्रह भी सौर परिवार के सदस्य हैं। अपने सौरमंडल में दो विशाल उल्का पिंड और पुच्छल तारे भी हैं।

अन्य तारे, सूर्य और उसके अन्य सदस्य ग्रह-उपग्रहों से मिलकर बना संसार एक आकाशगंगा कहलाता है। हम जिस 'स्पाइरल' आकाशगंगा में रहते हैं, उसमें विभिन्न गैसों की बनी १६ नीहारिकायें हैं। अपना सौरमंडल उन्हीं में से एक है। प्रत्येक नीहारिका में २५ खरब तारों के होने का अनुमान है। इस तरह अपनी आकाशगंगा में ही २५ × १६ = ४७५ खरब तारागण होंगे।

हमें अपनी पृथ्वी स्थिर और सूर्य को उसके इर्द-गिर्द चक्कर काटते दिखाई देता समझ में आता है; पर खगोलज्ञों ने सिद्ध किया है कि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है। यह सब सीमित दृष्टिकोण की बातें हैं। जिस प्रकार मनुष्य अपने आपको एक गाँव, एक प्रांत, एक देश का ही निवासी मानकर—रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, भाषा-संस्कृति के प्रति संकुचित दृष्टिकोण अपनाता है, पर जब वैज्ञानिकों के यह संदर्भ सामने आते हैं, तब पता चलता है कि अनंत आकाश के क्षुद्र जंतु मनुष्य-मनुष्य में कोई भेद नहीं। समस्त मनुष्य जाति एक है। उसे एक नियम व्यवस्था के अंतर्गत परस्पर

मिल-जुलकर रहना चाहिए। यदि वह परस्पर बैर-भाव रखता, स्वार्थ और संकीर्णता की बात सोचता और करता है, तो यह उसकी अबुद्धिमत्ता ही कही जायेगी।

इस संबंध में वैज्ञानिकों के कथन भी पूर्ण सत्य नहीं। उनके द्वारा प्रतिष्ठापित मान्यतायें अभी हमारी दार्शनिक मान्यताओं और हमारे ऋषियों की उपलब्धियों के सामने वैसी ही हैं, जैसे अनंत आकाश में आकाशगंगा और नीहारिकाओं के सिद्धांत। हमें जीवन की वास्तविकता को भौतिक दृष्टि से नहीं निरीक्षण करना चाहिए वरन् जैसा वेद कहते हैं—

पतंगमक्तमसुरस्य मायया हृदा पश्यन्ति मनसा विपश्चितः।
समुद्रे अन्तः कवयो वि चक्षते मरीचीनां पदमिच्छन्ति वेधसः।।

—ऋग्वेद १० ।१७७ ।१

परमात्मा की अद्‌भुत इच्छा द्वारा शरीर धारण करके प्रकट हुए मनुष्यों ! अपने आपको ज्ञान, भक्ति और मनन द्वारा प्राप्त करो। संसार समुद्र के बीच प्रत्येक पदार्थ को कवि की दिव्य दृष्टि से देखना चाहिए। जो ध्यान में स्थित होकर तेज को मूल स्थान में ढूँढ़ते हैं, वही आत्मा का पूर्ण रहस्य प्राप्त करते हैं।

विज्ञान और ब्रह्मांड की गहराइयाँ उसी ओर लेकर चल रही हैं। अब यह निश्चित हो चुका है कि सूर्य भी अपने समस्त परिवार के साथ अपनी आकाशगंगा के केंद्र से ३३००० प्रकाश वर्ष की दूरी पर रहकर, १७० मील प्रति सेकंड की गति से उसकी परिक्रमा कर रहा है। इस तरह हम सौरमंडल-नीहारिका से आकाशगंगा के सदस्य हो गये। जितना यह विराट् बढ़ा, हम और छोटे हो गये, उसी के अनुसार हमारे विचार और व्यवहार का तरीका भी बदलना चाहिए, तब तक हम संपूर्ण अस्तता को प्राप्त नहीं कर लेते।

अमरीका की माउंट पैलोमर वेधशाला में सबसे बड़े २०० इंच व्यास वाली दुरबीन है, इसे वैज्ञानिक हाले ने बनाया था।

बड़े दृष्टिकोण से संसार की असलियत का सबसे अधिक स्पष्ट और सही अनुमान होता है। इस दुरबीन से देखने पर पता चला कि अपनी आकाशगंगा से ३००,००,००,००० प्रकाश वर्ष अर्थात् लगभग २००,००,००,००,००,००,००,००,००,००० मील की दूरी पर सूर्य मंडल और १,००,००,००,००० सौर मंडल या नीहारकायें हैं। ऊपर दिये आँकड़ों के अनुसार इन नीहारिकाओं में तारागणों की संख्या २५,००००००००० खरब होनी चाहिए, जबकि इन तारागणों द्वारा घेरे जाने वाला क्षेत्र कुल १/१०० ही होगा अर्थात् संपूर्ण विस्तार इन तारागणों से क्षेत्रफल से कहीं ६६ गुना अधिक होगा।

इस सारे नक्शे को एक कागज में उतारना पड़े और दूरी का मापक १ प्रकाश वर्ष को १ इंच के बराबर माना जाये, तो भी कागज की लंबाई कई नीहारिकाओं की लंबाई से बढ़कर होगी। ज्यामिति शास्त्र (ट्रिगनामेट्री) के अनुसार चंद्रमा की दूरी निकालने के लिए चार हजार मील की लंबी आधार रेखा चाहिए, फिर इन नीहारिकाओं में बसने वाले तारे तो इतनी दूर हैं कि उनकी दूरी निकालनी पड़ जाये, तो २० करोड़ मील लंबी तो आधार रेखा ही चाहिए, इतनी बड़ी पटरी (फुटा) बनानी संभव हो जाये, तो उसका एक छोर पृथ्वी में रखकर नापने से भी सूर्य की आधी दूरी तक की ही माप हो सकेगी। सूर्य को पाने के लिए उसके दो गुने से भी अधिक लंबाई आवश्यक है।

दिनोंदिन विस्तृत होते जा रहे ब्रह्मांड का कभी जन्म हुआ था। तो जन्मता है उसकी निश्चित मृत्यु होती है। वैज्ञानिक भी गवेषणाओं द्वारा समय अवधि का निर्धारण कर चुके हैं और बता चुके हैं कि इस ब्रह्मांड का कभी-न-कभी अंत होना है। इतने विस्तृत और अकल्पनीय ब्रह्मांड का निश्चित समय पर अवसान होना है, तो मनुष्य की कौन बिसात है। इसके अतिरिक्त अनंत अकल्पनीय विस्तृत ब्रह्मांड का सुव्यवस्थित संचरण, संचालन

देखते हुए यह मानना पड़ेगा कि कोई-न-कोई नियम व्यवस्था है, जो इसका सुचारु रूप से संचालन कर रही है।

अनंत विस्तार के यह संदर्भ संकेत करते हैं कि मनुष्य क्षुद्र और अणु में ही उलझा न रहकर विराट् का भी कुछ अर्थ समझे। इसे भगवान् ने जो सर्वशक्ति संपन्न बुद्धि दी है, वह इसलिए है कि उसे तुच्छ कार्यों और तुच्छ स्वार्थों में ही अपना जीवन नष्ट न करते हुए आत्मा के उत्थान व कल्याण के लिए भी कुछ करना चाहिए।



जीवन का छोर कहाँ है ?

जड़ और चेतन के संयोग सायुज्य से उत्पन्न गति, स्पंदन और हलचल को जीवन चेतना के रूप में व्याख्यायित किया गया है। फिर भी यह प्रश्न अनुत्तरित ही रह जाता है कि जीवन का ओर-छोर कहाँ है ? इस प्रश्न के उत्तर में मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि जन्म दिन उसका आरंभ होता है और मरण दिन पर इतिश्री हो जाती है, पर यह स्थूल उत्तर है। सूक्ष्म उत्तर के रूप में यह कहा जाना चाहिए कि जिस दिन ईश्वरीय महातेज में जीव रूप स्फुर्ल्लिग प्रकट हुआ, वह उसका जन्म दिन है। योनियों के चक्र में भ्रमण करते हुए उसका यात्रा क्रम चल रहा है। वर्तमान मनुष्य जीवन उस जन्मांतरण के महाग्रंथ का एक पृष्ठ मात्र है। उसका अंत तब होगा जब महाप्रलय में ब्रह्म अपने सारे प्रस्तार को अपने आप में समेटकर केंद्रीभूत कर लेगा।

पृथ्वी का आदि-अंत कहाँ है ? इस प्रश्न का उत्तर साधारणतया उसका व्यास ८००० मील बताकर अध्यापक लोग दे देते हैं; पर यह तो केवल धरती की ठोस सीमा हुई। धरती का जीवन उसका वायुमंडल है। वायु न हो तो जीवन संचार ही संभव न हो। शब्दों का बोलना सुनना ही शक्य न रहे। बादल-वर्षा आदि की कोई व्यवस्था न बने। यह वायु भी धरती का वैसा ही अंग है, जैसा कि ठोस पदार्थ। यह वायु का घेरा उसका अपना है। जिस तरह किसी देश की सीमा उसके समीपवर्ती समुद्र में भी उतनी घुसी रहती है, जितनी में कि उसका यातायात एवं सुरक्षा निर्भर है। ठीक इसी प्रकार धरती की सीमा भी वहाँ तक जायेगी, जहाँ तक कि उसका अपना वायुमंडल संव्याप्त है। यह अत्यंत मोटी परिभाषा है। जितनी गहरी शोध धरती के अस्तित्व के बारे में हैं, उतने ही नये तथ्यों का अनावरण होता चला गया है। पिछली मान्यताएँ झुठलाई जाती रही हैं और नई स्थापना होती रही हैं। इस

उलट-पुलट का अंत कब और कहाँ होगा, यह बताया जा सकना आज की स्थिति में संभव नहीं।

अब से पचास वर्ष वर्ष पूर्व धरती का वायुमंडल ७.८ मील की ऊँचाई तक माना जाता था। पीछे कहा जाने लगा कि वह १००-१५० मील है। वैज्ञानिक अनुसंधान आगे बढ़े और यह परिधि २५०-३०० मील बताई जाने लगी। इसे आयनोस्फियर कहते हैं। इससे भी ऊँची लहराती, झूमती, घूमती, रंगीन ज्योतियाँ देखी गईं, जिन्हें वैज्ञानिकों की भाषा में आऊरोकल लाइट्स-मेरु ज्योतियाँ कहा जाता है। इनका अस्तित्व वायुमंडल के बिना संभव नहीं। अस्तु, वायुमंडल की सीमा ७०० मील ऊँचाई तक मानी गई। इस प्रकार पृथ्वी की परिधि पहले की अपेक्षा अब और आगे खिसक गई।

रूस का प्रथम उपग्रह पृथ्वी के इर्द-गिर्द चक्कर काटने के लिए जब भेजा गया था, तो अनुमान था कि ५००-६०० मील ऊँचाई पर हवा नाममात्र की होगी। उपग्रह को उससे कोई बाधा न पड़ेगी और वह ६ महीने अपना काम जारी रख सकेगा; पर वह अनुमान गलत निकला। इतनी ऊँचाई पर भी हवा का काफी दबाव था। उसकी रगड़ से यान की गति धीमी होती गई और उसे दो महीने में ही वापस लौटना पड़ा।

पृथ्वी के चारों ओर तीस मील तक फैला हुआ सघन वायुमंडल, सूर्य के अल्ट्रावायलेट किरणों का विवरण, व्यूहाणुओं से संबद्ध गैस क्षेत्र, दृश्यमान प्रकाश, अदृश्य ब्रह्मांड किरणें, रेडियो तरंगें, चुंबकीय परतें, लोकांतरों से आने वाला प्रभाव आदि अनेक तथ्य ऐसे हैं, जो खुली आँखों से दीख नहीं पड़ते फिर भी वे अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं, उनका अपनी धरती के साथ अविच्छिन्न संबंध है। मोटेतौर से ऋतु प्रभाव के साथ धरती के साथ जुड़े हुए अंतरिक्ष के संबंध से ही हम परिचित हैं, पर जो इससे आगे की-अनदेखी बातें हैं, वे और भी अधिक प्रभावशाली हैं। दूसरे शब्दों में यों कहना चाहिए कि भूगर्भ में जो कुछ है, उससे असंख्य गुना

पदार्थ और प्रभाव अंतरिक्ष में भरा पड़ा है। उससे अपरिचित रहे तो हमें अज्ञानियों की संज्ञा में ही गिना जायेगा।

अब तक समुद्र तट पर हवा का दबाव देखकर यह हिसाब लगाया जाता था कि ऊँचाई पर वह परत अमुक क्रम से घटती जायेगी और अंत में एक स्थान पर जाकर हवा बिल्कुल समाप्त हो जायेगी। पर वह अनुमान गलत निकला। वायुमंडल गर्मी को पाकर फैलता ही जाता है, वह इतना हल्का हो सकता है कि उसे जाना न जा सके; पर रहता वह बहुत आगे तक है।

३१ जनवरी, १९५८ को अमेरिकी कृत्रिम उपग्रह 'एक्स प्लोरा'—'प्रथम' अंतरिक्ष में उड़ाया गया। बाद में रूसी और अमेरिकन उपग्रह और भी उड़े। उनसे नई सूचना मिली कि पृथ्वी की भूमध्य रेखा के चारों ओर दो मोटे-मोटे कवच हैं। मानो धरती ने अपनी कमर में दो मेखलायें पहन रखी हैं। इनमें एक विचित्र प्रकार का वायुमंडल और इनमें से एक की ऊँचाई दो हजार मील और दूसरे की बीस हजार मील के लगभग है। इस प्रकार धरती की सीमा अब और आगे बढ़ गई।

यह मेखला-कवच किसी एक नई वस्तु के बने हैं, जिसे वैज्ञानिक भाषा में 'प्लाज्मा' कहा जाता है। अब तक यही पढ़ा सुना जाता रहा है कि पदार्थ तीन रूपों में पाया जाता है—(१) ठोस, (२) तरल, (३) वायव्य। पर अब यह चौथी वस्तु और सामने आई—प्लाज्मा। यह वायु से भी विरल एक ऐसी गैसीय स्थिति है, जिसमें परमाणुओं का भी विघटन हो जाता है।

पुराना अनुमान यह था कि आकाश सर्वथा शून्य एवं रिक्त है। पर अब यह स्पष्ट हो गया है कि वह क्षेत्र सर्वथा शून्य नहीं है। उसमें विद्युन्मय और चैतन्य तत्त्व भरे पड़े हैं। उसमें भी अपनी दुनिया की तरह ही हलचलों की भरमार है। समझना चाहिए इस शून्य आकाश सागर में ही लहरें, ध्वनियाँ, उथल-पुथल, जीव-जंतु

जैसे अपने ढंग के अतिरिक्त पदार्थों की भरमार है। न वहाँ निःस्पंदन है और न निश्चल स्थिति।

पृथ्वी में एक-दूसरे किस्म का वायुमंडल भी है—जिसे आकर्षण-चुंबकत्व अथवा ग्रेविटी के नाम से पुकारते हैं। यह चुंबकत्व 'प्लाज्मा' को प्रभावित करता है और उसकी प्रतिक्रिया लौटकर फिर पृथ्वी पर आती है। इस प्रकार का आदान-प्रदान और भी विस्तृत क्षेत्र पर अधिकार जमाता है। इस चुंबकीय प्रत्यावर्तन को संपन्न करने वाला वायुमंडल की तरह का ही एक चुंबक मंडल भी है। यह भी पृथ्वी का ही विस्तार है, इसे उसी का आधार साधन अथवा अधिकार क्षेत्र कह सकते हैं। इस प्लाज्मा प्रवाह के कारण ही सूर्य की शक्ति का धरती तक नियंत्रित रूप से आना संभव होता है और अन्य ग्रहों से उसका संपर्क बनता है। इसलिये धरती की परिधि नापनी हो, तो उसकी गणना वायुमंडल को आधार मानकर नहीं, वरन् चुंबक मंडल की परिधि के आधार पर नापनी चाहिए ?

पृथ्वी से सूर्य की दूरी १० करोड़ ६० लाख मील है। चूँकि यह सूर्य भी पृथ्वी की परिधि है और वायु की तरह उसकी गर्मी- रोशनी भी पृथ्वी के लिए जीवन आधार है। मछली का आधार पानी होता है। किसान का आधार खेत। इसी प्रकार पृथ्वी जिस खेत या समुद्र से अपना काम चलाती है उसका नाम हुआ—सूर्य। यह सूर्य भी एक प्रकार से उसी की संपत्ति है और वायुमंडल की तरह वह भी उसी का अधिकार क्षेत्र है। दूसरे ग्रहों का भी सूर्य से संबंध है—हो तो बना रहे। इससे अपना क्या बनता-बिगड़ता है। किसान का खेत होता है, उसमें चूहे, दीमक, कीड़े, पतंगे भी पलते रहते हैं। चूँकि दूसरे ग्रह भी सूर्य से लाभ उठाते हैं, इसलिये धरती का अधिकार उस पर से कम नहीं हो जाता। पृथ्वी की असली परिधि नापनी हो तो उसकी लपेट के भीतर सूर्य को भी लेना पड़ेगा।

● पृथ्वी भी सजीव प्राणवान

कुछ मोटी-मोटी बातें ही हम अपनी इस धरती के बारे में जानते हैं। धरती की खोज-बीन बहुत हुई है, उसके बारे में बौद्धिक ऊहापोह और यांत्रिक निरीक्षण के आधार पर बहुत कुछ जानने का प्रयत्न किया गया है—बहुत कुछ जाना भी है, पर जो कुछ जाना गया है, वह अत्यंत स्वल्प है। अभिनव खोजों से पता चलता है कि पृथ्वी के बारे में अब तक की, लाखों वर्ष की, जानकारी बहुत स्वल्प थी।

यों पृथ्वी का व्यास और परिधि का जो माप किया गया है, वह स्थिर नहीं है। पृथ्वी क्रमशः फूल रही है। उसका फुलाव यों बहुत मंद गति से है; पर वह चलता रहा तो वर्तमान माप से सैकड़ों मील की वृद्धि करनी पड़ेगी। समुद्र क्रमशः सूख रहा है। फलस्वरूप थल भाग बढ़ता जा रहा है। अनुमान है कि पाँच लाख वर्ष बाद पृथ्वी का थल क्षेत्र अब की अपेक्षा दूना हो जायेगा। जन्म के बाद वृद्धि का जो क्रम प्राणधारी वनस्पतियों तथा प्राणियों पर लागू होता है, वही पृथ्वी के बारे में भी है। पृथ्वी भी तो एक देवी है—इसकी सजीवता के कारण ही तो इसे धरती माता कहते हैं।

मनुष्य भले ही निश्चेष्ट बैठे—भले ही उदास, निराश दिखाई पड़ें; पर धरती उछलती-कूदती—नाचती, थिरकती अपनी मोद-विनोद भरी जीवन-यात्रा पर अनवरत् गति से चलती चली जा रही है। हम साधारणतया इतना ही समझते हैं कि पृथ्वी सूर्य का चक्कर काटती है और अपनी धुरी पर घूमती है। पर बहुत ही उसकी चाल में नृत्य जैसी कुदकन-फुदकन भी शामिल है, इसे अभी-अभी ही जाना गया है।

पृथ्वी की एक गति और भी है, जिसे 'थिरकन' कहा जा सकता है। वह अपनी धुरी पर सर्वथा स्थिर नहीं है। उसके अक्ष और सिरे अपना स्थान बदलते रहते हैं। १४ महीने की अवधि में यह विचलन प्रायः ७२ फीट तक होता पाया गया है। यों सवा चार

करोड़ फीट व्यास वाली पृथ्वी के कलेवर को देखते हुए ७२ फीट नगण्य हैं, तो भी उससे उसकी गति और स्थिति का पता तो चलना ही है। इंग्लैंड के खगोलवेत्ता जेम्स ब्रेडले ने इस थिरकन की संभावना व्यक्त की थी, जो अब विधिवत् यंत्रों द्वारा नापी जाने लगी है। ध्रुव, जिन्हें स्थिर मानकर ही उनका नामकरण किया गया था, अब पता चला है कि उनका भी तन-मन डोलता है और वे भी इधर-उधर भटकते हैं, एक जगह छोड़ते और दूसरी पकड़ते रहते हैं।

यह थिरकन क्यों होती है ? इसका सही पता तो नहीं चला, पर कुछ अनुमान ऐसे लगाये गये हैं, जिन्हें सारगर्भित कहा जा सकता है। यथा ध्रुव क्षेत्रीय बर्फ पिघलने से उत्पन्न असंतुलन—समुद्रीय जल का भटकाव—भूगर्भ में भरे हुए गर्म लावे का पुनर्वितरण एवं उद्वेलन आदि।

इस थिरकन के संबंध में अधिक जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से उत्तरी ध्रुव के चारों ओर ४० अक्षांश पर पाँच वेधशालाएँ स्थापित की जा रही हैं—(१) जापान में मिजुसावा (२) समरकंद के निकट केताव (३) इटली में सार्डीनिया द्वीप का कालीफोर्ते (४) अमेरिका में गैदर्ज वर्ग तथा (५) यूक्रिया इन पाँचों केंद्रों का संचालन इंटरनेशनल पोलरमोशन सर्विस द्वारा किया जा रहा है। इनमें लगे शोध यंत्र अत्यंत संवेदनशील हैं। इसलिए उन तक गर्मी एवं रोशनी का कम से कम प्रभाव पड़े, ऐसी व्यवस्था बनाई गई है। वहाँ बत्तियाँ अत्यंत क्षीण ज्योति से ही जलती हैं, जिनके सहारे अँधेरे में टटोलने की कठिनाई हल हो सके। खिड़कियाँ हर समय खुली रखी जाती हैं, ताकि कार्यकर्त्ताओं के शरीर की गर्मी जमा होकर यंत्रों को प्रभावित न करने लगे।

अपनी धरती को हम धूल-मिट्टी की बनी ऊबड़-खाबड़ कुरूप मात्र देखते हैं। यह अति निकटता की अवज्ञा है। वस्तुतः वह बहुत ही सुंदर और सुसज्जित है। इस शोभा, सौंदर्य को थोड़ा-सा ही दूर हटकर देखा जा सकता है। वह साज-सज्जा युक्त नववधू

की तरह अथवा किसी अति सुंदर रंग-बिरंगे वस्त्रों, आभूषणों से सुसज्जित देव प्रतिमा की तरह किसी चतुर कारीगर द्वारा गढ़ी गई-सी प्रतीत होती है। अपोलो ८ पर यात्रा करते हुए अंतरिक्ष यात्रियों ने बताया कि उन्होंने अंतरिक्ष में पृथ्वी को इस तरह देखा मानो काली मखमल की चादर पर किसी ने रंग-बिरंगे रत्नों से जगमगाता हुआ प्रकाशवान थाल लटका दिया हो। चंद्रमा हमें एक ही चमकीले रंग का दीखता है, पर चंद्र तल से पृथ्वी रंग-बिरंगी दीखती है। वनस्पतियों का रंग हरा, समुद्र का नीला और रेत का भूरा, बर्फ का सफेद स्पष्ट दीखता है। लगता था कई रंगों से सजा हुआ विशालकाय प्रकाशपिंड आकाश पर अपना साम्राज्य स्थापित किये हुए है।

बाहर से शांत, निश्चेष्ट पड़ी दीखने वाली धरती के भीतर निरंतर उद्वेग भरी हलचलें होती रहती हैं। अपूर्णता से पूर्णता की ओर बढ़ने के लिए उसका व्यग्र असंतोष कभी-कभी फूट पड़ता है, तो हम काँप उठते हैं। भूकंपों के रूप में वह अक्सर प्रकट होता रहता है। आंतरिक विक्षोभ ही क्रांतिकारी हलचलों के रूप में फूटते हैं। धरती ज्यों की त्यों नहीं पड़ी रहना चाहती। वह अपनी वर्तमान स्थिति में परिवर्तन और परिष्कार चाहती है। इसके लिए उसके भीतर-ही-भीतर चलने वाली हलचलें अक्सर विस्फोट बनकर बाहर आती रहती हैं। कई बार तो यह विस्फोट-भूकंप बहुत ही भयानक होते हैं और अपनी असाधारण भली-बुरी प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न करते हैं।

पृथ्वी के गर्भ में २५ मील गहरे उतरने पर इतनी गर्मी है कि उसमें पत्थर भी पिघल जाये। वहाँ सब कुछ पिघले हुए लोहे की तरह द्रव्य रूप में है। अपने जन्म काल में पृथ्वी भी सूर्य की तरह आग का गोला थी। वह क्रमशः ठंडी होती गई। ऊपर की परतें इतनी ठंडी हो गईं कि उस पर वनस्पतियों और प्राणियों का जीवन संभव हो सके, किंतु भीतर की आग अभी भी बहुत गरम है। ठंडक जैसे-जैसे भीतर घुसती जाती है, वैसे ही वैसे गरम परतों का

विस्तार सिकुड़ता है और वहाँ उत्पन्न होने वाली भाप परतें फोड़कर ऊपर निकलने का प्रयास करती है। इसी विस्फोट को ज्वालामुखियों के रूप में देखा और भूकंप के रूप में अनुभव किया जाता है।

सन् १९६७ में ११ दिसंबर को महाराष्ट्र के कोयना नगर के समीपवर्ती क्षेत्र में जो भूकंप हुआ, उसमें ८० किलोमीटर लंबी और छह फुट चौड़ी एक दरार ही जमीन में फट गयी थी। जान माल का विनाश भी रोमांचकारी था। पूरा नगर खंडहर में परिणत हो गया था।

कोयना भूकंप के बारे में भूगर्भ शास्त्री डॉक्टर कृष्णन का अनुमान था कि बाँध बनाकर उस क्षेत्र में, जो शिव सागर झील बनाई गयी है, उसका पानी धरती के नीचे की परतों में उतरकर इस भूकंप का कारण बना होगा।

कभी-कभी भूकंपों का परिणाभ वरदान जैसा भी होता है। सन् १९५६ में मैक्सिको के दक्षिणी रेगिस्तान में एक भयंकर भूकंप आया था, जिसके कारण वहाँ मीठे पानी का एक विशालकाय फब्बारा फूट पड़ा और पानी की एक-एक बूँद के लिए तरसने वाला वह क्षेत्र हरा-भरा उपजाऊ और मनुष्यों के रहने योग्य बन गया।

सन् १९२३ में १ दिसंबर को जापान की राजधानी टोकियो में ऐसा भूकंप आया था, जिसने प्रायः सारे नगर को उजाड़ दिया। बुरी तरह आग लगी और लगभग ढाई लाख मनुष्यों की जानें गईं। सन् १९०६ में १२ अप्रैल को सेनफ्रांसिस्को में भी ऐसा ही भूकंप आया था, जिसने तीन लाख मनुष्यों को बेघर बना दिया और हजारों की जानें ले लीं।

भारत में १७३७ का भूकंप इतिहास प्रसिद्ध है, जिसने तीन लाख मनुष्य मारे थे। सन् १९५० में आसाम के भूकंप में करीब ६० झटके लगे थे और डेढ़ हजार जानें गई थीं। १९३४ का बिहार भूकंप का आतंक दूर नहीं हो पाया था कि एक वर्ष बाद ही क्वेटा

में एक और भूकंप हुआ, जिसने ३० हजार मनुष्यों को उदरस्थ किया। कांगड़ा का भूकंप भी बहुत विनाशकारी था।

अब से कोई दो हजार वर्ष पूर्व इटली का विसूवियस भाग एक ऐसे ज्वालामुखी के रूप में फूटा था, जिसमें आग की नदी बहने लगी थी। विस्फोट से ७ मील दूर बसा पोंपियाई शहर पूरी तरह विस्मार हो गया था। ऐसा ही एक भयंकर विस्फोट प्रशांत महासागर के सुंडा द्वीप में—सन् १८६३ में हुआ था। उसने उस द्वीप का अता-पता ही मिटा दिया।

धरती के आरंभिक जीवन में भूकंपों और ज्वालामुखियों की भरमार थी; पर अब जैसे-जैसे ठंडक गहराई तक घुसती जा रही है, विस्फोटों का सिलसिला घटता जा रहा है। इतने पर भी प्रायः डेढ़ लाख छोटे-बड़े भूकंप अभी भी पृथ्वी पर अनुभव किये जाते हैं, जिनमें से कम से कम दस तो महाविनाशकारी अवश्य ही होते हैं।

पृथ्वी के गर्भ में क्या-क्या भरा पड़ा है, इस संबंध में केवल १५ प्रतिशत की ही जानकारी हमें है। भूगर्भ का ८५ प्रतिशत भाग ऐसा है, जिसके बारे में हम सर्वथा अनजान हैं। धरती से, जो लाभ अब तक उठाया जाता रहा है, उससे मनुष्य को संतोष नहीं, वह चाहता है कि क्यों न उसकी समस्त संपदा का पता लगा लिया जाय और उससे क्यों न भरपूर लाभ उठाया जाय ?

इसके लिए धरती की गहरी खुदाई करनी होगी, तभी भीतरी परतों के बारे में यथार्थ जानकारी प्राप्त की जा सकेगी। अभी तो, इस संबंध में जो जाना गया है, वह अनुमानों पर ही आधारित है।

इसके लिए होनोलूलू का उत्तर पश्चिमी प्रशांत महासागर का १७० मील का क्षेत्र चुना गया है। यहाँ पनडुब्बीनुमा ६ मकान बनाये जा रहे हैं, जो समुद्र में १८००० फुट गहराई में रहा करेंगे। इसमें एक शक्तिशाली 'ड्रिलिंग संयंत्र' रहेगा। यह 'टर्वो कोरक' यंत्र

लगातार २०३ घंटे चलने और दो मील गहरा छेद करने में सफल हो चुका है। इसकी नोंक बहुमूल्य हीरों से बनाई गयी है, जो गरम और कठोर परतों में भी छेद करती चली जायेंगी। यह छेद गहरे समुद्र तल से ही आरंभ करना उचित समझा गया है, ताकि १८ हजार फुट तक की गहराई का छेद करने का परिश्रम एवं व्यय बचाया जा सके।

यों सन् १९५२ में गार्डनलिल ने इस संदर्भ में बहुत दौड़-धूप की थी और काफी गहराई तक खुदाई भी की; पर जितना आवश्यक था उतना कार्य न हो सका, सन् १९६१ में वैस्कम योजना के अंतर्गत कैलिफोर्निया समुद्र तट पर यह प्रयत्न फिर आरंभ हुआ और समुद्र तल से ६०० फुट गहराई तक जाने में सफलता प्राप्त कर ली। अब वे प्रयत्न और अधिक तेज किये गये हैं।

एक बार ऐसा भी सोचा गया था कि जमीन के आरपार छेद कर दिया जाय; पर उसका खतरा जल्दी ही समझ लिया गया। समुद्र का पानी धरती की गरम परतों में समाकर न केवल सूख ही जायेगा, वरन् उसकी भाप से भयंकर ज्वालामुखी उठेंगे और धरती की ऊपरी परतों के चिथड़े उड़ जायेंगे। इन विभीषिकाओं को ध्यान में रखते हुए धरती में गहरा छेद करने के उत्साह के अगले कदम फूँक-फूँककर उठाये जा रहे हैं। अब तक धरती ११ हजार फुट की गहराई में खोदी जा चुकी है; पर उतना पर्याप्त नहीं। आवश्यक ज्ञान प्राप्त करने के लिए २० हजार फुट गहराई तक तो जाना ही पड़ेगा।'

पृथ्वी के इर्द-गिर्द सामान्यतया शांत वातावरण है, पर जब कभी वायुमंडलीय उथल-पुथल के छोटे-छोटे कारण बन जाते हैं, तो उसका प्रतिफल भयंकर आँधी-तूफानों और बवंडरों के रूप में सामने आता है। कहना न होगा कि इन विद्रूप-विद्रोहों के कारण असंख्यों को असंख्य प्रकार के कष्ट उठाने पड़ते हैं। साथ ही उस उथल-पुथल के कारण नये प्रकार के अवसर उत्पन्न होते रहते हैं।

प्रशांत महासागर में टाइफून और अटलांटिक महासागर में हरिकेन एवं टेरनेडो तूफान आते हैं। उष्ण कटिबंधीय चक्रवातों को ट्रापिकल साइक्लोन कहा जाता है।

पृथ्वी की गति के कारण उत्तरी और दक्षिणी गोलार्द्ध की हवाएँ परस्पर विरोधी दिशाओं में घूमती हैं। सूर्य की तेजी से हवाएँ ऊपर उठती हैं, फलस्वरूप अगल-बगल की हवाएँ नीचे की खाली जगह को भरने के लिए दौड़ती हैं। उसी उथल-पुथल में हवा के कितने ही चक्रवात बन जाते हैं और वे जिधर से निकलते हैं उधर ही अपनी प्रचंड शक्ति का परिचय देते हैं। वे अक्सर १००-१५० मील प्रति घंटे की चाल से चलते हैं। पर कभी-कभी २०० मील की भी उनकी गति देखी जाती है। इनकी परिधि २५ से ६०० मील तक की पाई जाती है। कभी-कभी यह तूफान अपने साथ समुद्र की लहरों को १५ फुट ऊँची उठा लेते हैं और समुद्र तट के क्षेत्र पर धावा बोल देते हैं। 'टेरनेडो' अपने सजातीयों में सबसे भयंकर होते हैं। वे विस्तार की दृष्टि से तो बहुत बड़े नहीं होते; पर अपनी विनाश शक्ति का आश्चर्यजनक परिचय देते हैं। मजबूत पेड़ों को वे तिनके की तरह उखाड़कर फेंक देते हैं। अमेरिका के इलिनाइज राज्य में एक बार एक तूफान ने एक गिरिजाघर का समूचा शिखर उखाड़ लिया था और उसे १५ मील दूर ले जाकर पटका था। अन्य छोटी-बड़ी इमारतों को उखाड़ फेंकने की घटनायें तो आये दिन होती रहती हैं।

भयंकर तूफानों का एक कारण तो उनमें रहने वाली हवा की ही तेजी होती है। दूसरी वजह यह है कि चक्रवात के मध्य भाग में वायु भार बहुत हल्का रह जाता है। साधारणतया मनुष्य शरीर पर हर घड़ी हवा का १५ टन भार लदा रहता है। पर उस तूफान के मध्यभाग में यह वजन प्रायः आधा रह जाता है। इससे वस्तुओं के ऊपर उठ जाने या फट जाने की स्थिति पैदा हो जाती है। इस भारहीनता के कारण, जो क्षति होती है, वह वायु वेग की तुलना में

कम नहीं अधिक ही होती है। इस दुहरी मार के कारण ही इन चक्रवातों द्वारा इतना भयंकर विनाश होता है।

अमेरिका के दक्षिणी राज्य और एशिया के जापान, फारमोसा, फिलीपाइन आदि भाग इनके अधिक शिकार होते हैं। हिंद महासागर में भी इनकी धूम रहती है और बंगाल की खाड़ी में वे अपना रौब दिखाने अक्सर आ धमकते हैं। कभी वे इतने भयंकर होते हैं कि भूगर्भ को प्रभावित करके ज्वालामुखी फूटने, भूकंप उत्पन्न करने की घटनायें खड़ी कर देते हैं। कितने ही नये द्वीपों का उदय होना और कितने ही टापुओं का समुद्र तल में समा जाना अक्सर तूफानों के साथ-साथ ही घटित होता है। ऐसे तूफान कई बार पृथ्वी के भीतर घटित होने वाली अन्य घटनाओं के कारण भी उत्पन्न होते देखे गये हैं।

हम जिस पृथ्वी को देख रहे हैं, वह करोड़ों वर्ष आयु की बुढ़िया है। नवोढ़ा धरती का तो रूप ही कुछ और था। भूगर्भशास्त्र (ज्योलाजी) के अनुसार, अपने आविर्भाव काल में पृथ्वी वातीय स्थिति (गैस फार्म) में थी। वह सूर्य की तरह प्रचंड ऊर्जा वाला गोला थी, जिसमें जीव का तो क्या, जल का रहना भी संभव न था। जल भी तब वाष्प रूप में ही था।

ऊर्जा फेंकना ग्रहों का स्वभाव है, उससे उनका ताप क्षीण होता है, ऐसे ही पृथ्वी की गर्मी भी धीरे-धीरे शांत होने लगी। पानी बरसा कुछ उससे भी गर्मी कम हुई और एक दिन पृथ्वी अर्द्ध तरल स्थिति में आ गई। वायुमंडल के संपर्क के कारण पृथ्वी का ऊपरी हिस्सा शीघ्र ठंडा हो गया और उसमें पपड़ी पड़ती गई, जिसके कारण कहीं पहाड़ बन गये, कहीं मैदान, कहीं टीले, नदी-नाले और कहीं चट्टान। ऊबड़-खाबड़ पृथ्वी धरातल में क्रमशः ठंडक के प्रवेश के कारण बनती चली गई।

पृथ्वी जैसी ऊपर से दिखाई देती है, भीतर से वैसी नहीं है। इसके अंदर अभी भी वह पुराने द्रव्य और संस्कार दबे पड़े हैं, जो

करोड़ों वर्ष पूर्व उसमें सर्वत्र भरे पड़े थे। पृथ्वी ऊपर से ठंडी होती गयी; पर अभी उसके गर्भ में अपार ऊष्मा संग्रहीत, सुरक्षित है। वह ज्वालामुखी (वालकेनो) के रूप में कभी-कभी फूट पड़ती है, तो उसकी शक्ति का पता चलता है।

पृथ्वी की यह शक्ति उसकी मूलभूत स्थिति के विद्यमान होने के कारण है। पृथ्वी ऊपर से ठंडी हो गयी, किंतु अनेक पर्तों के दबाव के नीचे अब भी प्राचीनतम गैसीय और तरल स्थिति विद्यमान है। अनुमान है कि ४ हजार मील की गहराई पर पृथ्वी के सभी खनिज और धातुयें या तो गैस स्थिति में होंगी या तरल स्थिति में। एक से एक महत्त्वपूर्ण वस्तुएँ भूगर्भ में छिपी पड़ी हैं। पेट्रोलियम और मिट्टी के तेल पृथ्वी की गहराई में ही मिलते हैं। सोने-चाँदी और मुख्यतया कोयले की खानें गहराई में ही हैं। साधारण स्थिति में ऊपर पृथ्वी का दबाव अधिक और भीतर की गैसों का दबाव कम रहता है, इसलिए ४ मील अंतराल की स्थिति का पता नहीं चल पाता, किंतु क्षरण द्वारा पृथ्वी का दबाव भीतरी गैसों की तुलना में कम होते ही भीतर की शक्ति उबल पड़ती है और पृथ्वी को फोड़कर अपने साथ चट्टानों का पिघला हुआ रूप लावा और उबलती हुई संग्रहीत गैसों को लेकर मीलों आकाश में उछलने लगती है। इस समय विनाशकारी दृश्य उपस्थित हो उठते हैं। लावा चारों ओर फैल जाता है। भूकंप उठ खड़े होते हैं, चारों ओर भाग-दौड़ मच जाती है।

भगवान् का बनाया हुआ यह विश्व ब्रह्मांड चमत्कारी और रहस्यों से भरा पड़ा है। उसकी एक छोटी-सी गुड़िया अपनी धरती है। उसे कितनी कारीगरी से बनाया गया और कितने रहस्यों से सँजोया गया है, इसे देखकर अपनी बुद्धि चकित रह जाती है। धरती की भीतरी और बाहरी गतिविधियों का थोड़ा-सा परिचय जानने पर हम अवाक रह जाते हैं और सोचते हैं जो जाना गया है, उससे असंख्य गुना जानने के लिए शेष है।

इस जगत् में जड़ के नाम से जाना गया भाग भी वस्तुतः चेतन है। उसमें चेतन की सारी विशेषताएँ विद्यमान हैं। अपनी धरती जड़ समझी जाती है; पर थोड़े गहन निरीक्षण से पता चलता है कि उसमें चेतन में पाये जाने वाले समस्त गुण मौजूद हैं। ब्रह्मांड के पिंड के रहस्य कितने असीम हैं और मानव बुद्धि कितनी ससीम है, इसका थोड़ा-सा आभास तब मिलता है, जब हम अपनी चिरसंगिनी धरती माता के अद्भुत रहस्यों के संबंध में मिलती आ रही जानकारी पर विचार करते हैं।

पृथ्वी गत रहस्य, मनुष्य के सामने भगवान् की कितनी ही प्रेरणाओं का प्रतिनिधित्व करता है। जीवन का कहीं आदि और कहीं अंत है अथवा नहीं। इस प्रश्न के उत्तर में आइन्स्टीन और मिकोवन्सकी द्वारा अंतरिक्ष के आदि, अंत संबंधी पूछे गये एक प्रश्न के उत्तर में दिये गये उत्तर को समझ लेना चाहिए। क्या अनंत अंतरिक्ष का कहीं अंत है ? इसके उत्तर में उपरोक्त वैज्ञानिकों ने कहा था—'है'। वे कहते हैं, सीधे चढ़ते हुए भी कोई वस्तु अंततः अपने मूल उद्गम पर घूमकर आ जाती है। इस गणित सिद्धांत के आधार पर अंतरिक्ष का अंत भी वहीं पर हो जाना चाहिए, जहाँ से इसका आंरभ होता है, अर्थात् 'अनादि और अनंत' कहे जाने वाले अंतरिक्ष का किसी एक बिंदु पर मिलन अवश्य होता है। भले ही वह कितना ही दूरवर्ती क्यों न हो ?

'अनंत के अंत' की बात उन्होंने सीधेपन की घुमाव-प्रक्रिया के साथ जोड़ी है। यूक्लिड के रेखागणित सिद्धांत के अनुसार 'एक' सीधी रेखा लंबाई में असीमित होने के बावजूद अपने उद्गम पर आ पहुँचेगी और मिल जायेगी। गणितज्ञ कहते हैं कि इस रेखा के मिलन—घुमाव क्रम में पचास खरब प्रकाश वर्ष लग सकते हैं; पर अंततः वह मिल जरूर जायेगी। ग्रह-नक्षत्र सीधे ही दौड़ते हैं, पर वह 'सीध' भी सीधी न रहकर आखिर गोलाई में ही घूम जाती है और हर पिंड को अपनी कक्षा निर्धारित करके उसी में चक्र की तरह घूमते रहना पड़ता है। गति कितनी ही सीधी या तीव्र क्यों न

हो, उसे झुकाव या घुमाव के प्रकृति बंधनों को स्वीकार ही करना पड़ेगा। यह सिद्धांत अंतरिक्ष पर भी लागू होता है, उसे भी गोल होना चाहिए और जहाँ भी उसका आंरभ बिंदु माना जाए, उसी से जुड़ा हुआ उसका अंत भी जानना चाहिए।

पृथ्वी की तरह ही जीवन का ओर-छोर कहाँ है ? इस प्रश्न के उत्तर में यदि गहरे मंथन पर उतरें, तो प्रतीत होगा यह मोटी मान्यता सर्वथा अपूर्ण है कि हम जन्मदिन पर जन्मे हैं, मरण दिन पर अपना अस्तित्व गँवा देंगे। वस्तुतः जीवन का दायरा बहुत बड़ा है। हम महान् से जन्मे हैं और महान् की ओर चल रहे हैं। मृत्यु न हमारा अंत है और न जन्म आदि। यह एक दिन के प्रभात और दिनांत जैसा उपक्रम है। इस स्थूल परिधि को ही हम सब कुछ न मानें, वरन् यह मानकर चलें कि सूर्य की परिधि तथा फैली हुई पृथ्वी की सीमायें जिस तरह अत्यंत विस्तीर्ण हैं, उसी तरह जीवन एक शरीर में विद्यमान होते हुए भी, उसका विस्तार समस्त जड़ चेतन की परिधि तक व्यापक है। ससीम को असीम तक फैला देखना यही तत्त्व ज्ञान है। पृथ्वी की ओर-छोर और जीवन के आदि-अंत का सही उत्तर इसी तथ्य के आधार पर उपलब्ध किया जा सकता है।



असीम पर निर्भर-ससीम जीवन

विश्व ब्रह्मांड कितना विराट्, विस्तृत और असीम है, इसे न तो शब्दों में व्यक्त किया जा सकता है और न ही उसका पूर्णतः पता लगाया जा सकता है। आखिर इतने विराट् ब्रह्मांड में इतने मानव का अस्तित्व इतना क्षुद्र हो भी तो उसकी सामर्थ्य और शक्ति विराट में भरे अर्थों को जान व समझ भी कैसे सकती है ? समूचा विश्व ब्रह्मांड निर्धारित नियम व्यवस्था के अंतर्गत सुचारु रूप से चल रहा है। उसमें कहीं भी कोई व्यतिक्रम नहीं है। इस बात को समझते हुए भी मनुष्य अपने स्वार्थ और हितों को इतनी संकीर्ण परिधि तक सीमित किये हुए है कि उस हत-बुद्धि को देखकर निराशा ही होती है।

छोटी और संकीर्ण परिधि में जीवनयापन करने की कल्पना अवास्तविक है। उस कल्पना को साकार नहीं किया जा सकता, साकार होने का भ्रम बनाये और पाले रहा जा सकता है। कोई सोचता भर रहे कि हम छोटे से घर-परिवार में रहकर दो-चार रोटी खाकर जरा-सी आवश्यकतायें पूरी करते हुए सरल-सा छोटा-सा स्वावलंबी जीवन जीते हैं। पर यह मान्यता थोड़ी-सी अधिक गहराई में उतरकर विचार करने से गलत सिद्ध होती है। हम अत्यधिक विशाल परिवार के सदस्य हैं और हमारी आवश्यकताएँ इतनी अधिक और इतनी मूल्यवान हैं कि उनके साधन जुटाने के लिए अति दूरवर्ती ग्रह-नक्षत्रों को अपनी क्षमता का एक महत्त्वपूर्ण अंश भेजना पड़ता है। यदि यह अनुदान न मिलें, तो हमें उतना अभावग्रस्त रहना पड़े कि जीवन को धारण किये रहना भी न बन पड़े।

अन्न, जल और वायु पर हमारा त्रिविध आहार निर्भर है। मोटे तौर पर अन्न-खेत में, जल-कुँए में और हवा-आकाश में विद्यमान दीखती है। हवा अनायास ही मिलती रहती है, जल थोड़े प्रयत्न

परिश्रम से मिल जाता है और अन्न भी थोड़ा पैसा खर्च करने या कृषि-क्रिया करने से मिल जाता है; पर इन तीनों की उत्पत्ति का मूल कारण जो परमाणु हैं, उनकी गतिशीलता अदृश्य रेडियो तरंगों पर निर्भर रहती है। यदि वे तरंगें, पृथ्वी पर उचित मात्रा में उपलब्ध न हों, तो परमाणुओं की जीवन-निर्मात्री गतिशीलता समाप्त हो जाय और अन्न, जल, वायु तीनों ही इस रूप में रह सकें, जिस रूप में इस समय मिलते हैं। तब आधार विहीन जीवन की स्थिरता भी न रहेगी। मनुष्य तो क्या पशु-पक्षियों और जीव-जंतुओं का भी जीवन संभव न होगा और वृक्ष-वनस्पतियों का स्वरूप यदि बन भी गया, तो वह वर्तमान स्वरूप से सर्वथा भिन्न, अत्यंत भोंड़े और विकृत रूप में ही शेष रहेगा। उस स्थिति में पृथ्वी धीरे-धीरे अन्य ग्रहों की तरह निर्जीव होती चली जायेगी।

धरती पर जीवनोपयोगी परिस्थितियों का आधार जिन रासायनिक हलचलों और आणविक गतिविधियों पर निर्भर है, वे अंतरिक्ष से आने वाली रेडियो तरंगों पर अवलंबित हैं। शक्ति के स्रोत उन्हीं में हैं। विविध विधि हलचलों की अधिष्ठात्री इन्हीं को कहना चाहिए। हमारा-परिवार—हमारा शरीर—हमारा अस्तित्व सब कुछ प्रकारांतर से इन रेडियो तरंगों पर निर्भर है, जिन्हें हम आत्मा की तरह जानते भले ही नहीं; पर निश्चित रूप से अवलंबित उन्हीं पर हैं। जीवन लगता भर अपना है, पर उसमें समाविष्ट प्राण इसी अदृश्य सत्ता पर निर्भर हैं, जिन्हें विज्ञान की भाषा में रेडियो तरंग-पुंज कहते हैं।

चेतन जगत् में जिस तरह ब्रह्म की सत्ता व्याप्त है, उसी तरह पदार्थों के अस्तित्व और क्रिया-कलाप में इन रेडियो तरंगों की सत्ता प्राण की तरह समाई हुई है।

यह तरंगें कहाँ से आती हैं ? क्या यह धरती की अपनी संपत्ति या उपज है ? इस प्रश्न का उत्तर विज्ञान इस रूप में देता है कि धरती के पास जो जीवन संपदा है, वह पूरी की पूरी उधार ली हुई है। सूर्य की ऊर्जा धरती पर एक संतुलित मात्रा में

बिखरती है। रोशनी और गर्मी के रूप में उसे हम अनुभव करते हैं, अप्रत्यक्ष रूप से उसमें जीवन तत्त्व भी सम्मिलित हैं। सूर्य यदि न हो, अधिक दूर या अधिक पास हो, तो फिर पृथ्वी भी अन्य ग्रहों की तरह किसी प्राणधारी के निवास के लिए सर्वथा अनुपयुक्त बन जायेगी। सूर्य की ऊर्जा को बहुत बड़ा श्रेय इस धरती को जीवन प्रदान करने का है।

सूर्य से उपलब्ध होने वाली ऊर्जा जिस रूप में पृथ्वी पर आती है, वह भी अकेले सूर्य की संपत्ति नहीं है, उसके साथ अन्य ग्रह-तारकों का अनुदान भी मिला-जुला होता है। रेडियो तरंगों का अति महत्त्वपूर्ण भाग तो सूर्य की अपेक्षा अन्य ग्रहों से ही अधिक आता है। पृथ्वी पर विद्यमान रेडियो शक्ति का स्रोत तलाश करने पर उसका उद्‌गम अति दूरवर्ती क्वासर तारकों में और अति निकटवर्ती 'पल्सर' पिंडों से आता है। यदि उनका अनुदान बंद हो जाय, तो फिर यहाँ सब कुछ सुनसान ही दिखाई पड़ने लगे और वह अन्न, जल, वायु भी उपलब्ध न हो, जिसे हम तुच्छ और स्वल्प श्रमसाध्य समझते हैं। यह वस्तुएँ सस्ती कितनी ही हों, पर उनकी उत्पादक क्षमता उन दूरवर्ती अति कृपालु पिंडों की उदारता पर निर्भर है, जिनके बारे में हम कुछ भी नहीं जानते।

इस संसार में प्रचुर मात्रा में रेडियो तरंगें बरसाते 'क्वासर' तारक, हमारी पृथ्वी से सबसे अधिक दूरी पर हैं, इनकी खोज डच खगोल विज्ञानी मार्टिन स्मिड नामक व्यक्ति ने की। केलीफोर्निया के पालोयर शिखर पर सभी २०० इंच व्यास वाली विशालकाय दुरबीन के आधार पर लंबे समय तक अनुसंधान करते रहने पर वह इन तारकों का पता लगाने में समर्थ हुआ।

क्वासर का प्रकाश पृथ्वी तक आने में १० करोड़ प्रकाश वर्ष लगते हैं। दुरबीनों ने जो कुछ इन तारों के बारे में दिखाया है, वह १० करोड़ वर्ष पुराना दृश्य है। हो सकता है कि इस बीच वे नष्ट भी हो गये हों और प्रकाश किरणें, उस समय से चलती रहकर अब कहीं धरती तक आ पहुँची हों।

सन् ६० में अत्यंत तीव्र रेडियो तरंगें प्रसारित करने वाले चार तारे देखे गये। यों इनका प्रकाश क्षीण था; पर रेडियो तरंगों का प्रसारण अत्यधिक था। पहचानने के बाद उनका नाम क्वासी स्टेलो सोर्सेज (क्वासर) रखा गया।

रेडियो टेलिस्कोप—एक्सरे टेलिस्कोप प्रभृति शक्तिशाली यंत्रों से क्वासर नक्षत्रों के द्वारा पृथ्वी पर आने वाले प्रभावों को जाना गया है और इस निष्कर्ष पर पहुँचा गया है कि ईथर में संव्याप्त रेडियो तरंगों की प्रस्तुत क्षमता को बहुत बड़ा अनुदान इन क्वासर तारकों से मिलता है।

क्वासर हमसे बहुत दूर हैं और इतनी अधिक तेजी के साथ हमसे दूर हट रहे हैं, जिसे अकल्पनीय ही कहना चाहिए। क्वासर तारकों में से एक तो २८००० मील प्रति सेकंड के हिसाब से हमारी आकाशगंगा को छोड़कर शून्य आकाश में दौड़ता चला जा रहा है। इन दूरवर्ती क्वासरों के अतिरिक्त इसी प्रयोजन में सहायक निकटवर्ती पल्सर पिंड भी हैं। रेडियो किरणें उनसे भी हमें प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती हैं।

आकाश में छोटे-छोटे कितने ही पिंड छितरे पड़े हैं। इन्हें 'पल्सर' जाना जाता है। इनका व्यास प्रायः १० मील का पाया गया है। अब तक इनकी संख्या ३७ खोजी जा चुकी है और भी रेडियो दुरबीनों की पकड़ में आने वाले हैं। यह सर्वथा सुनिश्चित अवधि के अंतर से अति तीव्र रेडियो तरंगें छोड़ते हैं। इस अंतर को एक सेकंड के तीसवें भाग से लेकर ३ सेकंड तक का पाया गया है। इस अंतर को 'बीच-बीच' की ध्वनि के साथ सुना जाता है। पहले अनुमान था कि किसी अन्य ग्रह के प्राणी एक निर्धारित क्रम-प्रक्रिया के साथ टेलीग्राम की डैमी से निकलने वाले 'गरगट्' प्रवाह की तरह कुछ संदेश भेज रहे हैं। इस संदर्भ में भी बहुत खोज हुई, पीछे यह निष्कर्ष निकला कि पल्सर जितने छोटे हैं, उतनी ही तीव्र रेडियो तरंगों के संचारक भी। पृथ्वी पर फैली हुई रेडियो क्षमता की समर्थता में इनका भी बड़ा हाथ है।

सन् १०५४ में एक अति भयंकर तारा विस्फोट हुआ। क्रैव नीहारिका के मध्य से हुए इस विस्फोट का, जिसका प्रकाश आकाश के सुदूर क्षेत्र में भारी चमक के रूप में देखा गया। उसका अवशेष—सुपर नोवा के रूप में अभी भी मौजूद है। पल्सर उसी के मलवे से बने हैं और वे प्रकाश ही नहीं, गामा किरणें और एक्स किरणें भी बड़ी मात्रा में धरती पर भेज रहे हैं। देवज्ञ किप थार्न ने इन्हें भीमकाय आकाशी लट्टू बताया है।

एकाकी जीवन की कल्पना व्यर्थ है। वस्तुतः हम अत्यंत विशालकाय ब्रह्मांड के एक तुच्छ से घटक हैं। जीवन के उद्भव से लेकर उसे गतिशील रखने वाले साधनों के लिए न केवल पृथ्वी पर फैले मनुष्यों, जानवरों और वनस्पतियों पर निर्भर रहना पड़ता है, वरन् अंतरिक्ष के सुदूर निवासी ग्रहपिंड भी हमारी जीवन यात्रा के आधार हैं।

● दिव्य अनुदान—ईश्वर की अनुकंपा

अंतरिक्ष में सुदूर स्थित ग्रहपिंड किस प्रकार हमारी जीवन यात्रा का आधार बने हुए हैं—उसका थोड़ा-सा परिचय ऊपर की पंक्तियों में दिया है। ये अनुदान इतनी उदारतापूर्वक मनुष्य को मिले हुए हैं कि उनका ठीक-ठीक पता भी नहीं चलता। वैसे भी प्रत्यक्ष जगत् में जीव-जंतुओं, वृक्ष-वनस्पतियों द्वारा मनुष्य को अपनी जीवनयात्रा संपन्न करने के लिए जो सहयोग, आश्रय और अनुकंपा मिलती है, उसके लिये कौन वह उपकृत भाव से रहता है। पेड़-पौधों, वृक्ष-वनस्पतियों, जलाशय, सागर, वायु, आकाश, पृथ्वी आदि चेतन-जड़ समझी जाने वाली वस्तुओं के अभाव में जीवन यात्रा के सुविधापूर्वक चलने की कल्पना ही नहीं की जा सकती।

नित्यप्रति के व्यवहार से प्रकृति की ये व्यवस्थाएँ सहज स्वाभाविक लगती हों, लेकिन हाल ही में हुई वैज्ञानिक शोधों के अनुसार जीवन न केवल आपस में ही एक-दूसरे पर निर्भर है, अपितु वह अज्ञान और रहस्य के गर्भ में छुपे हुए पर भी निर्भर है।

बताया जाता है कि उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव पृथ्वी के उभय पक्षीय संतुलन केंद्र बिंदु हैं। अंतरिक्ष का असीम विकिरण पृथ्वी के इर्द-गिर्द मंड़राता रहता है। उसका एक सीमित अंश ही भूतल को स्पर्श कर पाता है। धरती के बहुत ऊपर एक जटिल आवरण कवच चढ़ा हुआ है। प्राचीन काल में योद्धा लोग जिरह बख्तर पहन कर युद्ध लड़ने जाते थे और शत्रु के प्रहारों से आत्मरक्षा करते थे। उसी प्रकार का कवच सुदूर अंतरिक्ष में पृथ्वी ने भी धारण कर रखा है। अंतर्ग्रहीय विकिरण उसी से टकराकर इधर-उधर छितरा जाते हैं। यदि यह आवरण न होता, तो अंतरिक्ष से बरसते रहने वाले अनियंत्रित शक्ति प्रवाह उसे कब का नष्ट-भ्रष्ट कर देते।

सौरमंडल के अन्य ग्रह-उपग्रहों में यही एक विशेष कमी—कमजोरी है कि उनके ऊपर पृथ्वी जैसा आवरण कवच नहीं है। अतएव उल्काएँ उनसे टकराती रहती हैं। विकिरण उन्हें प्रवाहित करते रहते हैं। इन्हीं आक्रमणों ने उन्हें निष्प्राण बना रखा है। यदि उन्हें भी धरती जैसा कवच मिला होता, तो वे भी अपनी पृथ्वी की तरह ही सुंदर, सुरभित और सजीव बने हुए होते।

अंतर्ग्रहीय ऊर्जायें पृथ्वी पर उत्तरी ध्रुव क्षेत्र में होकर छनी हुई उपयुक्त एवं आवश्यक मात्रा में ही प्रवेश करती हैं और पृथ्वी को अभीष्ट परिपोषण देने के उपरांत दक्षिणी ध्रुव में होती हुई बहिर्गमन कर जाती हैं। एक सिरे से प्रवेश करके चूहा जिस प्रकार बिल के दूसरे सिरे से निकल भागता है, उसी प्रकार अंतर्ग्रहीय विकिरण धरती के एक सिरे से प्रवेश करता और दूसरे से बाहर निकलता रहता है। उत्तरी ध्रुव क्षेत्र में एक चुंबकीय छलनी है, जो केवल उसी प्रवाह को भीतर प्रवेश करने देती है, जो उपयोगी है। छलनी में बारीक आटा ही छनता है और भूसी ऊपर रह जाती है। ठीक इसी प्रकार ध्रुवीय छलनी में भी पृथ्वी के लिए उपयोगी विकिरण आते हैं और शेष को पीछे धकेल दिया जाता है।

उत्तरी ध्रुव पर यह छानने की क्रिया टकराव के रूप में देखी जा सकती है। इस टकराव से एक विलक्षण प्रकार के ऊर्जा-कंपन

उत्पन्न होते हैं, जिनकी प्रत्यक्ष चमक उस क्षेत्र में प्रायः देखने को मिलती रहती है, उसे ध्रुवप्रभा या मेरुप्रकाश कहते हैं। इसका दृश्यमान प्रत्यक्ष रूप जितना अद्भुत है, उससे अधिक रहस्यमय उसका अदृश्य रूप है। इस मेरुप्रभा का प्रभाव स्थानीय ही नहीं होता, वरन् समस्त भूतल को यह प्रमाणित करता है। भूगर्भ में, समुद्र तल में, वायुमंडल में, ईथर के महासागर में जो विभिन्न प्रकार की हलचलें होती रहती हैं—चढ़ाव-उतार आते हैं, उनका बहुत कुछ संबंध इस ध्रुवप्रभा अथवा मेरुप्रकाश से होता है। इतना ही नहीं, उसकी हलचलें प्राणधारियों की शारीरिक एवं मानसिक स्थिति को भी प्रभावित करती हैं। मनुष्यों पर तो उसका प्रभाव विशिष्ट रूप से होता है। सुविज्ञ लोग उस प्रभाव प्रवाह में से अपने लिये उपयोगी तत्त्व खींच लेने, धारण कर लेने में भी सफल होते हैं और उससे असाधारण लाभ प्राप्त करते हैं।

ध्रुवप्रकाश सर्चलाइट के समान होता है। यह उत्तर की अपेक्षा दक्षिण में ज्यादा तेज होता है। उत्तरी ध्रुव पर गर्मी भी हो जाती है, दक्षिण पर नहीं। उत्तरी ध्रुव पर एस्किमो रहते हैं, दक्षिणी ध्रुव में पेंगुइन पक्षी के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलता। यह पक्षी आगंतुकों से बहुत प्रेममय व्यवहार करते हैं। उत्तरी ध्रुव पर धरती भीतर को धँसी है, १४००० फुट गहरा समुद्र बन गया है, जबकि दक्षिणी ध्रुव १६००० फीट उभरा हुआ है। उत्तर में बर्फ बहती है, दक्षिण में स्थिर रहती है। दक्षिण ध्रुव में रात धीरे-धीरे आती है, सूर्य दक्षिणी क्षितिज के लिए बहुत थोड़ी देर के लिए जाता है। सूर्यास्त का दृश्य घंटों रहता है। अस्त हो जाने पर महीनों अंधकार छाया रहता है, केवल मात्र उत्तर की ओर कुछ प्रकाश दिखाई देता है। एक बार ध्रुव यात्री बावर्ड ने यहाँ सूर्य को बिल्कुल हरे रंग का देखा। ऐसा दृश्य इससे पहले किसी ने नहीं देखा था। किरणों की वक्रता के कारण ऐसे विलक्षण दृश्य वहाँ प्रायः देखने को मिलते रहते हैं।

ध्रुवों पर सूर्य की किरणों की विचित्रता के फलस्वरूप अनेक विचित्रताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। दूर की वस्तुएँ हवा में लटकती हुई

जान पड़ती हैं। टीले जितने होते हैं, उससे कई गुना बड़े लगते हैं। कई बार सूर्य एक के स्थान पर कई-कई दिखाई पड़ते हैं और इसी प्रकार चंद्रमा भी। बर्फ में, हवा में भी कई बार सूर्य दिखाई दे जाते हैं। यह सभी कृत्रिम सूर्य वास्तविक जैसे ही लगते हैं।

पृथ्वी का चुंबकत्व जो कि पृथ्वी के कण-कण को, पृथ्वी में पाये जाने वाले जीवन तत्त्व को प्रभावित करता है, वस्तुतः ब्रह्मांड से आने वाले प्रकाश के शक्ति या तत्त्व प्रवाह के कारण है। यह प्रवाह उत्तर की ओर से आता है, इसलिये उत्तरी ध्रुव क्षेत्र और दक्षिणी ध्रुव क्षेत्र दोनों दो ध्रुव होने पर भी गुण-धर्म से अलग-अलग हैं। सामान्यतः दोनों चुंबकीय ध्रुवों की विशेषताएँ एक समान पर एक-दूसरे से भिन्न दिशा में होनी चाहिए, किंतु कई बातों में समानता होने पर भी दोनों की विशेषताओं में बड़ा अंतर है।

उत्तरी ध्रुव एक गढ़ा है, दक्षिणी ध्रुव गुमड़ा। उत्तरी ध्रुव की बर्फ दक्षिणी ध्रुव से अधिक गर्म होती है, जल्दी गलने और जल्दी जमने वाली भी होती है। दक्षिणी ध्रुव उजाड़ क्षेत्र है, यहाँ कुछ पक्षी जलचरों के अतिरिक्त एक पंखहीन मच्छर भी पाया जाता है। वह क्या खाकर जीता है और कैसे इतनी भयंकर शीत में जीवन धारण किये रहता है, वैज्ञानिक इस प्रश्न का आज तक समाधान नहीं कर सके।

उत्तरी ध्रुव में जीवन का बाहुल्य है, पौधों तथा जंतुओं की संख्या करोड़ों तक पहुँचती है। यहाँ दिन और रात समान नहीं होते। ६-६ माह के भी नहीं होते—कई बार रात ८० दिन के बराबर होती है। यह सबसे लंबी रात होती है। क्षितिज के बीच सूर्य वर्ष में १६ दिन रहता है। यहाँ चंद्रमा इतनी तेजी से चमकता है कि उसके प्रकाश में, दिन में सूर्य की रोशनी के समान ही काम किया जा सकता है।

कुछ मेरुप्रकाश विस्तृत और आकृतिहीन होते हैं, कुछ सजीव और हलचल करते हुए। कभी वे किरणों की लंबाई के रूप में जान पड़ते हैं, कभी प्रभा और ज्वाला के रूप में, कभी वह दृश्य बदलता

हुआ, कभी चाप, पड़ी और कोरेना के रूप में होता है, तो कभी प्रकाश गुच्छे सर्चलाइट के समान। यह रात भर तरह-तरह के दृश्य बदलते हैं। हर दृश्य और परिवर्तन सूर्य की अपनी आंतरिक हलचल का प्रतीक होता है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण अंतर्राष्ट्रीय भू-भौतिक वर्ष अनुसंधान के दौरान आया और उसके विलक्षण आकार-प्रकार देखने में आये। स्मरण रहे भू-भौतिक वर्ष सूर्य के १५ वर्षीय चक्र के दौरान मनाया गया। इस अवधि में सूर्य की आंतरिक हलचल बहुत बढ़ जाती है, यह प्रकाश मुख्यतः चुंबकीय तूफान होता है, जो पृथ्वी की सारी यांत्रिक क्रिया उत्पन्न करके रख देता है।

अनुसंधान के दौरान यह पाया गया है कि सूर्य में जब तेज दमक दिखती है, उसके एक-दो दिन बाद ही मेरु प्रकाश भी तीव्र हो उठता है। यह बढ़ी हुई सक्रियता सूर्य-विकिरण तथा कणों की बौछार का ही प्रतीक होती है। शांत अवस्था में भी यह संबंध बना रहता है; पर प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर नहीं होता। वह कण अति सूक्ष्म इलेक्ट्रॉन (ऋण आवेश कण), प्रोटान (धन आवेश कण) होते हैं, जो २०० से लेकर १००० मील तक प्रति घंटे की गति से दौड़ते हुए पृथ्वी तक आते हैं, जबकि प्रकाश पृथ्वी तक पहुँचने में कुल ८ मिनट ही लेता है। प्रकाश की गति १,८६,००० मील प्रति सेकंड है, इसका अर्थ यह हुआ कि पृथ्वी सूर्य की विद्युतीय शक्ति से संबद्ध है। पृथ्वी स्वयं एक चुंबक की तरह है। चुंबकत्व पार्थिव कणों में विद्युत् प्रवाह के कारण पैदा होता है, इससे स्पष्ट है कि पृथ्वी की चुंबकीय क्षमता सूर्य के ही कारण है। यह कण पृथ्वी से हजारों मील ऊपर ही पृथ्वी के क्षेत्र द्वारा पृथ्वी के उत्तरी तथा दक्षिणी ध्रुव की ओर मोड़ और प्रवाहित कर दिये जाते हैं।

मार्च तथा सितंबर में (चैत्र तथा क्वार) में, जबकि पृथ्वी का अक्ष सूर्य के साथ उचित कोण पर होता है, मेरु-प्रकाश अधिक मात्रा में पृथ्वी पर पड़ता है, जबकि अन्य समय गलत दिशा के कारण प्रकाश लौटकर ब्रह्मांड में चला जाता है, यही वह अवधि

होती है, जब पृथ्वी में फूल-फलों की वृद्धि और ऋतु-परिवर्तन होता है। उस समय सूर्य की यह विद्युत धाराएँ स्पष्ट और अधिक मात्रा में पृथ्वी पर पड़ती हैं। प्रयोगों से यह भी सिद्ध हो चुका है कि उत्तरी-दक्षिणी ध्रुवों में विद्युत् धारा की चादरें जैसी ढकी रहती हैं।

एक और आश्चर्यजनक घटना वायुमंडल की है, वह सीटी जैसी ध्वनियों की। अनुमान किया जा रहा है कि यह आकाश में तड़ित-विद्युत् के कारण विद्युत् चुंबकीय तरंगों के कारण होता है, इससे वायुमंडल में ७००० मील की ऊँचाई पर भी एक विद्युत्मय गैस की उपस्थिति की संभावना व्यक्त की जा रही है, ज्ञात नहीं यह सूर्य की शक्ति है या पृथ्वी की।

ध्रुवप्रभा एवं मेरु-प्रकाश का धरती पर होने वाली विभिन्न हलचलों एवं परिवर्तनों से क्या संबंध है ? उसका अन्वेषण करने में विज्ञानवेत्ता संलग्न हैं। वे क्रमशः इस निष्कर्ष पर पहुँचते जा रहे हैं कि मनुष्य के निजी पुरुषार्थ का महत्त्व एक बहुत छोटी सीमा तक ही सीमित है। बहुत करके जो अंतरिक्ष और भूलोक के बीच चल रहे आदान-प्रदान पर ही निर्भर रहता है। धातुएँ, वनस्पति, ऋतु परिवर्तन, जलवायु जैसे महत्त्वपूर्ण तत्त्वों पर इन्हीं अदृश्य अभिवर्षणों का प्रभाव रहता है, इतना ही नहीं वे प्राणियों की शारीरिक एवं मानसिक स्थिति को भी प्रभावित करते हैं। उस दृष्टि से स्वतंत्र समझा जाने वाला प्राणि-जगत् प्रगति की सूक्ष्म हलचलों की कठपुतली मात्र बनकर, एक प्रकार से नियति-नियंत्रित ही बन जाता है।

एक बारगी यह स्थिति बड़ी दयनीय प्रतीत होती है कि प्राणियों को नियति की कठपुतली मात्र बनकर रहना पड़े। अंतर्ग्रहीय प्रवाह उसके सामने जो भी परिस्थितियाँ उत्पन्न करे, उसके सामने नतमस्तक होना पड़े।

पर विज्ञान पर अधिक गहराई से विचार करने पर स्पष्ट होता है कि ध्रुवीय छलनी की तरह ही मानवी चेतना में भी एक

अद्‌भुत विशेषता यह है कि वह प्रकृतिगत प्रवाहों में से जिसे चाहे ग्रहण करे एवं जिसे चाहे अपने मनोबल की टक्कर मारकर इधर-उधर छिपा दे।

प्रकृति की इन प्रेरणाओं को हृदयंगम करने पर जीवन यात्रा सुख-शांतिपूर्वक संपन्न की जा सकती है। प्रकृति की इन प्रेरणाओं की, नियम-मर्यादाओं की अवहेलना करने पर उसके दंड, दुष्परिणाम भी भोगने पड़ते हैं। परस्पर सहयोग एक ऐसा तत्त्व है जिसमें न केवल प्राणी क्रमिक-विकास की दिशा में अग्रसर होते हैं, वरन् निर्जीव समझे जाने वाले तत्त्वों में भी सुव्यवस्था रहती है।

● मनुष्य की प्रधान विभूति

मानवी विशेषताओं में उसकी प्रधान विभूति चिंतन परायणता विचारशीलता नहीं, वरन् सहयोग भावना है, उसके आधार पर मिल-जुलकर काम करना, साथ-साथ पारस्परिक स्नेह, सौजन्य प्रदान करना संभव हो सका है। यही वह आधार है जिसके कारण विविध-विधि प्रगति की संभावनाएँ सामने आयी हैं।

सहयोग से अनुशासन का विकास होता है और हर किसी को अपनी मर्यादाओं में रहने के लिए स्वेच्छापूर्वक अथवा नियंत्रण में आबद्ध होकर रहना पड़ता है। एकाकी उच्छृंखलता में अहंता का पोषण हो सकता है; पर उससे स्वयं के लिए और अन्य सभी के लिए विपत्ति ही उत्पन्न होती है। यह दृश्य अन्य प्राणियों में भी देखे जाते हैं, जिनमें असहयोग पनप रहा होगा, वे अपने अस्तित्व को संकट में डाल रहे होंगे। इतना ही नहीं जहाँ कहीं उनका संपर्क होगा, वहाँ भी विपत्ति उत्पन्न कर रहे होंगे।

न केवल मनुष्यों और प्राणियों में, वरन् विश्व ब्रह्मांड के प्रत्येक घटक में मर्यादा, नियम, व्यवस्था की अवहेलना से प्रस्तुत होने वाली विपत्तियों के उदाहरण देखे जा सकते हैं। आकाश की दुनिया में स्वच्छंद विचरण करने वाली उल्काओं को इसी श्रेणी में गिना जा सकता है। उन्हें स्वेच्छाचारिता पसंद है। मिल-जुलकर

एक बड़े पिंड के रूप में सम्मिलित बड़ा अस्तित्व बनाना, उन्हें स्वीकार नहीं। इससे उनकी अहंता पर आघात तो आता है, समूह का श्रेय सबको मिलता है; पर जिन्हें एकाकी श्रेय लेने की अभिलाषा है, उन्हें तो अपनी आपाधापी का ही ध्यान रहता है और अपनी ढाई चावल की खिचड़ी अलग पकाने में ही अच्छा लगता है। आकाश में आवारागर्दी करती हुई जहाँ तक स्वच्छंद विचरण करने वाली यह स्थिति है, उनका आकार ही नहीं लक्ष्य भी छोटा होता है। अतएव वे परिस्थितियों के एक झोंके में उलट-पुलट हो जाती हैं और न केवल अपना अस्तित्व गँवा बैठती है, वरन् जहाँ भी उनके चरण पड़ते हैं, वहीं विनाश उत्पन्न करती हैं।

रात में कभी-कभी तेजी से कोई तारा टूटता-सा लगता है। वह प्रकाश की लकीर बनाता हुआ, एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर दौड़ता है और कुछ ही सेकंड की चमक दिखाकर, एक छोर से दूसरे छोर पर पहुँचते-पहुँचते लुप्त हो जाता है। इन्हें प्रायः अशुभ माना जाता है और किसी अनिष्ट की सूचना अथवा किसी महामानव की मृत्यु के साथ उनका संबंध जोड़ा जाता है और भी कई तरह की अटकलें लगायी जाती हैं; पर वस्तुतः यह उल्कायें हैं, जो स्वभावतः आकाश में अपने ढंग से अपनी कक्षा में भ्रमण करती रहती हैं, पर उनमें से कभी कोई भूल-भटक कर पृथ्वी के समीप आ जाती है, तो पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से खिंचकर अपने वायुमंडल में चली आती है। इस वायुमंडल के घर्षण से वह अग्निवर्ण होकर, जल-भुनकर खाक हो जाती है। यही वह दृश्य है, जो चमकीली लकीर करती हुई आतिश-बाजी की तरह हमें दिखाई देती हैं, जिसे तारा टूटना कहते हैं।

अधिकांश उल्काएँ छोटी होती हैं और हमारे वायुमंडल में प्रवेश करते ही जल जाती हैं; पर उनमें से कुछ बहुत बड़ी होती हैं, वे पूरी तरह अस्तु नहीं जल पातीं और अधजली धरती से आ टकराती हैं। ऐसे उल्का खंड जहाँ-तहाँ म्यूजियमों में एवं शोधशालाओं में संग्रहीत हैं। अब तक उपलब्ध उल्काओं में से

सबसे बड़ी ग्रीनलैंड में पायी गई थी, उसका भार साढ़े छत्तीस टन और आयतन ११ × ७ × ५ फुट है।

पिछले दिनों धरती पर सबसे बड़ा उल्कापात ३० जून, १६०८ को प्रातः ७ बजे साईबेरिया के त्यूंगून वन प्रदेश में हुआ। इसकी अग्नि शिखा आकाश में २५ मील तक फैली उसके कारण ४०० वर्गमील का प्रदेश पूर्णतया जल गया, उसमें न कोई प्राणी बचा न पेड़ पौधा। यह अग्नि पिंड कोई १००० टन भारी था।

इसके उपरांत एक और विकट उल्कापात १२ फरवरी, १६४७ को प्रातः १० बजकर ३८ मिनट पर 'जायेगा' के वन प्रदेश में हुआ। यह अग्निपिंड घोर गर्जन करता हुआ, उत्तर से दक्षिण की ओर दौड़ता चला आया और आलिन की पर्वत शृंखला से जा टकराया। फलस्वरूप ढाई वर्ग किलोमीटर क्षेत्र पूरी तरह चूर-चूर हो गया और वह उल्का भी टुकड़ों में बँटकर छितरा गई। जगह-जगह गहरे गड्ढे बन गये। उसका वजन सौ टन के लगभग था। छितराते हुए टुकड़े जहाँ-तहाँ मिले, उनमें सबसे बड़ा टुकड़ा १७४५ किग्रा० का था।

उल्काओं को दो भागों में विभक्त कर सकते हैं—पाषाण प्रधान, लौह प्रधान। किसी में मृतकांश अधिक होता है, किसी में धातु अंश की बहुलता होती है। धातुओं में लौह अधिक होता है। फिर भी निकिल, एल्युमीनियम, मैंगनीज, ताँबा, क्रोमियम, मैगनीशियम, कोबाल्ट, ऑक्सीजन, सल्फेट, फासफोरस, कार्बन आदि पदार्थ पाये जाते हैं। कुछ खनिज तथा रसायन उनमें ऐसे भी होते हैं, जो अपनी धरती पर नहीं पाये जाते। इसलिए उनका नामकरण भी नहीं किया गया है।

जो उल्काएँ पृथ्वी के समीप हैं, वे या तो खुद भटक जाती हैं या फिर पृथ्वी ही कभी उल्का समूह के पथ के समीप जा पहुँचती है तो उसका टकराव होता है, साधारणतः उल्काएँ अपने पथ पर घूमती रहती हैं और पृथ्वी अपनी कक्षा में। एक-दूसरे के क्षेत्र में

प्रवेश करने पर ही वह विभीषिका उत्पन्न होती है, जिसे उल्कापात के नाम से देखा या जाना जाता है।

सन् १८८६ में पृथ्वी के समीप से 'इरोस' नाम की उल्का धरती के बहुत पास से गुजरी थी। उसकी लंबाई बीस मील और चौड़ाई दस मील थी। १५ जून, १९६८ को 'इकरेस' नामक ऐसी उल्का पृथ्वी के निकट से गुजरी थी, जो यदि धरती से टकरा जाती तो १००० हाइड्रोजन बमों के एक साथ विस्फोट होने जैसा विध्वंस होता और भूलोक का अस्तित्व खतरे में पड़ जाता।

यह उल्काएँ जब छोटी होती हैं, तो पृथ्वी के वातावरण में आकर घर्षण जन्य ऊर्जा से जलकर नष्ट हो जाती हैं; पर जब वे अधिक बड़ी और अधिक कठोर होती हैं, तो जलते-झुलसते हुए भी अपना अस्तित्व बनाये रहती हैं और धरती से टकराकर उसे भारी क्षति पहुँचाती हैं।

भूतकाल में ऐसी ८ उल्कायें समय-समय पर पृथ्वी से टकरा कर उसे भारी क्षति पहुँचा चुकी हैं। हडसन की खाड़ी के किनारे का प्रख्यात गोल गड्ढा, जर्मनी में १७ मील चौड़ा राइन केसल का गड्ढा इन उल्काओं से उत्पन्न हो सकने वाली विभीषिकाओं का परिचय देते हैं। यदि ऐसी उल्कायें ध्रुवीय क्षेत्र पर गिर पड़ें तो पृथ्वी का सत्यानाश ही हो जायेगा। ध्रुवों की सतह पिघल पड़ेगी और समुद्र में बाढ़ आने से धरती के अनेक भागों में जल-प्रलय का दृश्य उपस्थित होगा। चंद्रमा पर वायुमंडल झीना है, इसलिए वहाँ उल्कायें आसानी से गिरती रहती हैं। अस्तु, उन्होंने सुंदर चंद्रमा को खार खड्डों वाला बना दिया है।

उल्काओं का ही नहीं, मनुष्यों और प्राणियों का उच्छृंखल एकाकीपन हर दृष्टि से भयानक ही है। इसके विपरीत संघबद्ध, मर्यादापरायण और नियम व्यवस्था के अंतर्गत रहते हुए ग्रह-नक्षत्र अपनी गतिविधियाँ शांतिपूर्वक चला रहे हैं। चूँकि जीवन

अन्योन्याश्रित है, एक-दूसरे से संबद्ध और निर्भर है। अतएव किसी का भी मर्यादा-भंग पूरी व्यवस्था में गतिरोध उत्पन्न करता है। ऐसी स्थिति में स्वयं सुख-शांति से रहने और समान सुचारु सुव्यवस्था बनाये रहने के लिए आवश्यक है कि मनुष्य संघबद्ध अनुशासन से काम ले। प्रगति और शांति के लिए सहयोग और अनुशासन का सार्वभौम नियम सदा से ही अपना महत्त्व प्रतिपादित करता रहा है और यह तथ्य अनंतकाल तक अपनी उपयोगिता सिद्ध करता रहेगा।



आस्तिक बनें, ताकि सुखी रहें

ईश्वरीय सत्ता की विधि-व्यवस्था अथवा नियम-मर्यादाओं का एकमेव उद्देश्य इस विराट् ब्रह्मांड का सुचारु संचालन है। प्रत्येक प्राणी और प्रत्येक घटक अपना जीवनक्रम निर्बाध रूप से चला सके, इसीलिए विभिन्न नियम-मर्यादायें हैं। इन नियम-मर्यादाओं को ईश्वर का अधिनायकत्व नहीं, उसकी परम उदारता ही कहा जाना चाहिए, क्योंकि यदि ये नियम-मर्यादायें न रहें, तो सृष्टि-ब्रह्मांड पर मत्स्य-न्याय के अनुसार शक्तिशाली का अस्तित्व ही बचा रहे। उन नियम व्यवस्थाओं के साथ परमात्मा की उदारता इस बात में भी देखी जा सकती है कि जीवनोपयोगी सारी आवश्यकताएँ आसानी से पूरी होती रहें, ऐसे साधन सृष्टि में सर्वत्र सहज-सुलभ हैं।

जीवन की उपयोगी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इस सृष्टि में ऐसी व्यवस्था है कि सरलतापूर्वक पूरी हो जाया करें। साँस लिये बिना एक क्षण भी काम नहीं चल सकता, सो प्राण वायु प्रचुर मात्रा में सर्वत्र मौजूद है। जल का उसके बाद नंबर आता है वह भी थोड़ा प्रयत्न करने पर हर जगह मिल जाता है। अन्न की आवश्यकता उसके पश्चात् है, उसके लिये प्रयत्न भी करना पड़ता है और खर्च भी, इसी क्रम से जो आवश्यकताएँ अपेक्षाकृत हल्की होती जाती हैं, उन्हीं का मिलना श्रम साध्य होता जाता है।

जीवन धारण की प्रक्रिया को देखिए। भ्रूण अति दुर्बल होता है, उसे वातानुकूलित और सर्व सुविधा संपन्न निवास चाहिए। माता का गर्भाशय उसके लिए अतिशय सुविधापूर्ण है। उतने दुर्बल और अपूर्ण प्राणी के लिए इतना साधन संपन्न स्थान संसार में अन्यत्र कहीं हो ही नहीं सकता। सो हर प्राणी को सरलतापूर्वक मिल जाता है। जितने समय भ्रूण पकता नहीं, उतने समय निवास की वहाँ समुचित व्यवस्था है। यदि यह सब सरलतापूर्वक उपलब्ध न हुआ

होता, तो प्राणी की सर्वप्रथम और सर्वोपरि महत्त्व की आवश्यकता पूरी न हो सकने के कारण जन्म ही संभव न होता।

इसके पश्चात् जन्म लेने के बाद सुपाच्य सुसंतुलित आहार की आवश्यकता होती है और एक सहायक संरक्षक सेवक की, जो उस नवजात असमर्थ शिशु की न केवल सारी आवश्यकता पूरी करे, वरन् उसे पर्याप्त स्नेह प्रदान कर मानसिक विकास भी संभव बनाये। इन सारी आवश्यकताओं को माता पूरा करती है। नवजात शिशु के लिए माता का दूध ही अमृत है। इससे बढ़िया खुराक इस धरती पर हो ही नहीं सकती। माता से बढ़कर स्नेही—सहायक—संरक्षक—सेवक भला और कहाँ मिलेगा ? अरक्षित, असमर्थ और असहाय शिशु के लिए पालन-पोषण की आवश्यकता पूरी होना अनिवार्य है। इसके बिना जीवन धारण किये रहना कठिन है।

जन्म तो हो जाय पर माता की सहायता न मिले, तो बालक की कैसी दुर्गति होती है, इसकी कल्पना कठिन नहीं। अन्य प्राणियों की अपेक्षा मनुष्य के बालक को तो और भी अधिक मात्रा में—गहरी तथा लंबे समय तक चलने वाली मातृ-सहायता अपेक्षित होती है। इसीलिए प्रकृति से ऐसा प्रबंध सभी प्राणियों के लिए किया हुआ है। असली माता तो प्रकृति ही है। प्राणी को संसार में भेजती है, तो उसकी व्यवस्थाएँ भी आदि से अंत तक बनाना उसी का काम है।

बालक बड़ा होता है। उसकी कोमलता सभी का जी हुलसाती है और उससे आकर्षित होकर हर कोई उस कोमल बालक की सहायता करना चाहता है। असमर्थता की पूर्ति इस उदार सहायता से पूरी होती है। दूसरों के बालक पास खेलते हों, तो जी हुलसता है। उन्हें गोदी में लेने की, खिलाने की, प्यार करने की और पास में कुछ वस्तु देने की हो, तो देने को जी करता है। माता-पिता, परिवार, पड़ौस, संबंधी, स्वजनों से इस प्रकार की सद्भावनाएँ और सहायताएँ उसे सर्वत्र मिलती हैं। गुरुजनों का अनुग्रह रहता है।

अध्यापक उनसे क्षमा और उदारता का व्यवहार करते हैं। बड़ों के साथ जैसा बराबरी का, कठोरता का व्यवहार किया जाता है, वैसा कोई गुरुजन उनसे नहीं करता। बड़े आदमी की गलती—अशिष्टता पर क्रोध आता है और दंड-प्रतिशोध के कदम उठते हैं; पर बालकों की पग-पग पर होने वाली गलतियाँ ऐसे ही हँसी, मुस्कराहट के बीच भुला दी जाती हैं। कई बार तो उन गलतियाँ में रस भी लिया जाता है।

सरकार बाल-कल्याण विभाग चलाती है, प्रौढ़ कल्याण—वृद्ध कल्याण की उपेक्षा करके भी उसका ध्यान बालकों पर रहता है। सामाजिक संस्थाएँ भी इधर ही बहुत ध्यान देती हैं। सबकी स्वाभाविक सहानुभूति बालकों की ओर अनायास ही खिंची रहना—प्रकृति की उसी प्रेरणा के अनुसार है, जिसमें उन्हें अपनी अविकसित स्थिति में सब ओर से अधिक सहायता एवं उदारता अपेक्षित हैं। यह सारी व्यवस्था मनुष्य के स्वभाव में पहले ही सम्मिलित है। मनुष्य ही क्यों अन्य प्राणियों में भी अपने ही नहीं, पराये बच्चों के प्रति अधिक कोमल और उदार भावनायें पायी जाती हैं।

जीवन-विकास की क्रमिक यात्रा में यौवन आता है। पितृत्व की इच्छा काम वासना के रूप में जगती है। जोड़ी मिलाने की आवश्यकता अनुभव होती है। समयानुसार यह भी सहज ही बन जाता है। एक ऐसी उमंग महक उठती है, जिसमें हर नर-मादा अपने विपरीत लिंग वाले प्राणी को खोजने और आकर्षित करने में सफल हो जाता है। मनुष्य को तो बहुत सुविधाएँ प्राप्त हैं। बिना साधन, सुविधा वाले कीड़े-मकोड़े, पतंगे, जलचर, पशु-पक्षी सभी को काम तृप्ति का अवसर मिलता है और सभी गर्भाधान प्रक्रिया पूरी कर लेते हैं। मनुष्यों के लिए भी यह सुविधा बन ही जाती है। प्रकृति की दयालुता को देखिये कि वास्तविक आवश्यकताओं का समाधान कितनी सरलता और सुंदरता के साथ जुटाती है। इसके लिए उसने अपनी क्रम-व्यवस्था बड़ी सरल और सुविधाजनक

बनाकर रखी है और उसका प्रवाह अनादि काल से बहता चला आता है।

रोग-निरोध की जन्मजात शक्ति रक्त कणों में विद्यमान रहती है। असली चिकित्सक भीतर मौजूद है। बाहर के डॉक्टर तो उन भीतरी चिकित्सकों की थोड़ी सहायता भरकर देते हैं। मरण से पूर्व मूर्च्छा आ जाती है और वह अति कष्ट साध्य आपरेशन बिना कष्ट के संपन्न हो जाता है। मरने के बाद शरीर की दुर्गति न हो, इसलिए उसे खाने के लिए कृमि उसी में तत्काल पैदा हो जाते हैं, कौए, गिद्ध, चील, सियार, कुत्ते आदि प्राणी मृत शरीर की गंध पाते ही उस गंदगी को साफ करने दौड़ पड़ते हैं। सभ्य समाज में तो मुर्दे को जलाने, गाड़ने या बहाने की प्रथा पहले से ही प्रचलित है। जीवन विकास का यह अंतिम अध्याय भी ठीक तरह संपन्न हो जाय, इसके लिए प्रकृति ने समुचित व्यवस्था जुटाकर रखी है।

जो आवश्यक है, वह यहाँ प्रचुर मात्रा में विद्यमान है और स्वल्प प्रयत्न से मिल सकता है। जो अनावश्यक है, हानिकारक है, उसी का मिलना दुर्लभ है। फल उपयोगी हैं, वे सरलता से प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। विष अनावश्यक और हानिकारक है, उसे प्राप्त करना हो तो बहुत ढूँढ़ खोज करनी पड़ेगी, पैसा और श्रम खर्च करना पड़ेगा, तब यत्र-तत्र किंचित मात्रा में विष मिलेगा। गाय, घोड़ा, भेड़, बकरी आदि उपयोगी पशु सरलतापूर्वक उपलब्ध हैं; पर सिंह, व्याघ्र, चीता, रीछ आदि के दर्शन भी दुर्लभ हैं। वे दूरवर्ती सघन वनों में स्वल्प संख्या में ही होते हैं। अनुपयोगिता के कारण प्रकृति ने उन्हें ऐसी ही स्थिति में रखा है। उनकी संतान भी अधिक नहीं बढ़ती, जबकि उपयोगी पशु अपनी संख्या वृद्धि निरंतर करते रहते हैं।

प्राणियों के लिए उपयोगी वनस्पति—घास, पौधे, वृक्ष स्वतः ही उगते-बढ़ते और फलते-फूलते रहते हैं। इसके अतिरिक्त और भी जो कुछ अनावश्यक है, वह इस संसार में सरलतापूर्वक उपलब्ध है। दिन में सूरज की रोशनी जलती है, रात को चंद्रमा चमकता है,

ताकि हमें अंधकार में न भटकना पड़े। प्रकृति माता के इन अनुदानों को कहाँ तक गिनाया जाय, जीवन की हर आवश्यकता और सुविधा को जुटाने में उसने कहीं कुछ भी कसर नहीं छोड़ी है।

यह अनुदान शरीर यात्रा तक ही सीमित नहीं है। सामाजिक—मानसिक—आर्थिक और नैतिक क्षेत्र में भी ऐसी विधि व्यवस्था इस विश्व में विद्यमान है कि प्रगति की हर उचित आवश्यकता सरलतापूर्वक पूरी हो सके। इच्छा हो और पूरा करने के लिए पुरुषार्थ जुटा दिया जाय, तो लगभग हर उचित आवश्यकता पूरी होती चली जायेगी। उसमें कोई बड़ा विघ्न न आयेगा। विघ्न यदि हैं भी तो बाहर नहीं भीतर है। मनुष्य के अपने दोष दुर्गुण ही उसकी प्रगति में बाधक होते हैं। आलस्य, प्रमाद, अनियमितता, असंयम, आवेश, अति स्वार्थ जैसे कारण ही असफलताओं और विपत्तियों के कारण बनते हैं। अन्यथा सद्‌गुण, सत्कर्म और सत्स्वभाव से मनोभूमि परिष्कृत कर लेने पर परिष्कृत दृष्टिकोण और व्यवस्थित क्रिया-कलाप के आधार पर किसी भी क्षेत्र में सफलता पायी जा सकती है। किसी भी क्षेत्र में साधन संपन्न बना जा सकता है। जिस दिशा में भी कदम उठाले, उधर ही प्रगति हो सकती है।

बाधक बाह्य जगत् नहीं—अवरोध प्रकृतिगत नहीं, स्वनिर्मित हैं और ऐसे हैं कि यदि उसकी हानियों को समझ लिया जाए और निरस्त करने के लिए कटिबद्ध हो जाया जाए, तो उनका एक क्षण भर भी ठहरना नहीं हो सकता। आंतरिक शत्रु लगते भर बलिष्ठ हैं, संकल्प शक्ति की एक चिनगारी उन्हें नष्ट करके रख सकती है। आज घोर दुर्गुणी दीखने वाला व्यक्ति कल पूर्ण परिष्कृत मनुष्य बन सकता है। व्यक्तित्त्व के विकास और मनःक्षेत्र से संबंधित समस्त क्षेत्रों की प्रगति के लिए प्रकृति ने अपने सभी द्वार खुले रखे हैं। कोई चलना ही न चाहे या उलटा चले तो इसमें विश्व क्रम का नहीं, आदमी के अपने औंधे और ओछे कर्तृत्व का ही दोष है। सुधारना चाहें तो उसका परिमार्जन भी अति सरल है। इतिहास में

अगणित उदाहरण ऐसे विद्यमान हैं, जिनमें संकल्प बल से अपनी हेय स्थिति को आमूल-चूल परिवर्तन करके लोगों ने आशाजनक और आश्चर्यजनक परिवर्तन प्रस्तुत किये हैं।

आत्मिक क्षेत्र सबसे ऊँचा है। उसमें भी प्रगति के लिए द्वार खुला पड़ा है और उसमें प्रवेश करना अति सरल है। ईश्वर हमारे चारों ओर घिरा हुआ है। हमारे रोम-रोम में समाया हुआ है। मछली के भीतर और बाहर पानी ही पानी भरा रहता है। अपने अंदर और बाहर ब्राह्मी चेतना का भरा-पूरा समुद्र ही लहरा रहा है, जो इतना समीप हो—इतना प्रचुर हो—उसे प्राप्त करने में क्या कठिनाई हो सकती है ?

पिता और पुत्र का सामीप्य दुरूह कैसे हो सकता है ? माता और बच्चे के सान्निध्य में अवरोध क्या होगा ? भाई से भाई बिछुड़ा रहे, इसकी क्या आवश्यकता ? पति और पत्नी के मिलने में क्या बाधा ? प्रकृतिगत अवरोध इस प्रसंग में रत्ती भर भी बाधक नहीं है। आत्मा और परमात्मा के बीच, पिता-पुत्र, माता-शिशु, भाई-भाई और पति-पत्नी के लौकिक रिश्तों की अपेक्षा भी कहीं अधिक सघन, स्वच्छ और प्रखर संबंध है। सांसारिक रिश्तों में दो स्वतंत्र व्यक्तित्वों की बात रहने से कुछ भिन्नता और पृथकता भी रह सकती है; पर आत्मा और परमात्मा तो अंश और अंशी हैं। उनमें तो अग्नि और चिनगारी जैसा ही भेद है। कमल और उसकी पंखुड़ियों की—पदार्थ और उसके परमाणु की—सूर्य और उसकी किरणों की पृथकता आँकी भले ही जाय, वस्तुतः उनमें तादात्म्य हैं। ईश्वर और जीव इतने ही घनिष्ठ हैं—आत्मा और परमात्मा के बीच ऐसा कोई व्यवधान नहीं है, जिसे दूर करने के लिए—चिंतित, दुःखी, खिन्न, उद्विग्न या हताश होने की आवश्यकता हो। यह मिलन-प्रक्रिया अति सरल है। ईश्वर प्राप्ति से अधिक आसान कार्य और दूसरा कोई हो ही नहीं सकता।

शरीर और मन परस्पर ओत-प्रोत हैं। शरीर और मन को मिलाने के लिए कुछ बड़ा काम नहीं करना पड़ता। करना पड़ता है

तो इतना ही कि जो नशा पी लिया था, उसे उतर जाने दिया जाय और फिर दुबारा न पिया जाय। नशा पीने से ही शरीर और मन का संबंध लड़खड़ा जाता है। चलना, करना, बोलना, सोचना, अनियंत्रित हो जाने की उपहासास्पद स्थिति इसलिये बनती है कि नशे की खुमारी शरीर और मन का संबंध गड़बड़ा देती है। दोनों अलग-अलग दिशा में जाते—स्वच्छंद विचरते दीखते हैं। उनमें दोष नशे का है जिसका परित्याग कर दिया जाए, तो शरीर और मन की एकसूत्रता-एकरूपता में कोई अंतर दिखाई न पड़ेगा। ईश्वर और जीव के बीच में माया का नशा ही प्रधान रूप से बाधक है। यह पर्दा हटा कि उसकी आड़ में बैठे भगवान के दर्शन हुए। बाधक तो यह झीना-सा पर्दा ही है।

निद्राग्रस्त हो जाने पर शरीर और मन के संबंध गड़बड़ा जाते हैं। शरीर कहीं पड़ा रहता है—मन नहीं घूमता है। बिलगाव को देखकर, यह नहीं मान लेना चाहिए कि शरीर और मन दूर हैं, असंबद्ध हैं, इन्हें इकट्ठा करने के लिए कोई बहुत भारी प्रयास, पुरुषार्थ करना पड़ेगा। दोनों की एकता अविच्छिन्न है। अंतर तो निद्रा ने डाला है। शरीर को मृतक जैसा उसी ने बनाया है। मन को देह से असंबद्ध करने के लिए यह निद्रा ही कारण है। यदि इसे हटा दिया जाय तो जागते ही दोनों की एकता फिर यथावत् हो जायगी। आत्मा और परमात्मा दोनों अभिन्न हैं, भिन्नता तो अविद्या रूपी निद्रा ने उत्पन्न की है। इसे हटाना-भगाना ही इस दुःखदायी वियोग के अंत करने का एकमात्र उपाय है।

ईश्वर हमारे सबसे अधिक समीप है। संसार को कोई पदार्थ या व्यक्ति जितना समीप हो सकता है, उसकी अपेक्षा ईश्वर की निकटता और भी अधिक है। वह हमारी साँस के साथ प्रवेश करता है और समस्त अंग-अवयवों में प्राणवायु के रूप में जीवन को अनुदान प्रतिक्षण प्रदान करता है, यदि इसमें क्षण भर का भी व्यवधान उत्पन्न हो जाय, तो मरण निश्चित है।

हृदय की धड़कन उसी की रासलीला है। संभावित सोलह हजार नाड़ियों के साथ वही कृष्ण रमण करता है। मांसपेशियों के आकुंचन-प्रकुंचन में गुदगुदी उसी के द्वारा उत्पन्न की जाती है।

अंतःकरण में उसी का गीता-प्रवचन निरंतर चलता रहता है। ज्ञान-विज्ञान की विशालकाय पाठशाला उसी ने हमारे मस्तिष्क में चला रखी है। उसका अध्यापन ऐसा है, जो कभी बंद ही नहीं होता।

इतना सब होते हुए भी हम ईश्वर से अरबों-खरबों मील दूर हैं। उनकी समीपता की अनुभूति के साथ-साथ जिस परम संतोष और परम आनंद का अनुभव होना चाहिए, वह कभी हुआ ही नहीं। ईश्वर की समीपता को जीवन मुक्ति भी कहते हैं। उस स्थिति को सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य—इन चार रूपों में वर्णन किया गया है। ईश्वर के लोक में रहना—उसके समीप रहना—उस जैसा रूप होना—उसमें समाविष्ट हो जाना—यह चारों ही अवस्थाएँ उस स्थिति की ओर संकेत करती हैं, जिसमें मनुष्य की भीतरी चेतना और बाहरी क्रिया उतनी उत्कृष्ट बन जाती है, जितनी कि ईश्वर की होती है।

ईश्वर से दूर रहने और उस दूरी के कारण ईश्वर के सान्निध्य से मिलने वाले लाभों से वंचित रह जाने का कारण है—उसकी नियम व्यवस्था को न समझना या समझते हुए भी उसका पालन नहीं करना। अपनी चेतना को ईश्वरीय चेतना में घुला देने अर्थात् उसकी व्यवस्था के अनुरूप स्वयं को ढाल लेने से वे सारे अवरोध समाप्त हो जाते हैं, जो जीवनानंद की प्राप्ति में रोड़ा बनते हैं। ईश्वर-प्राप्ति की प्रथम सीढ़ी यही हो सकती है कि मनुष्य अपने आपको उसके अनुरूप बनाये। इस साधना द्वारा ही मनुष्य अपने आपको असीम के साथ घुला-मिला सकता है और ससीम को असीम के समतुल्य बना सकता है।

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा